दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2499 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 29 अंक नं० 5

अध्यात्म-पद

निज घर नाहिं पिछान्या रे।
मोह उदय होने तैं मिथ्या भर्म भुलाना रे॥ निज० ॥टेक॥
तूं तो नित्य अनादि अरूपी सिद्ध समाना रे।
पुद्गल जड़ में राचि भयो तूं मूर्ख प्रधाना रे॥निज० ॥1॥
तन धन जोबन पुत्र वधू आदिक निज माना रे।
यह सब जायं रहन के नांहीं समझ सियाना रे॥निज० ॥2॥
बलापने लड़कन संग जोबन त्रिया जबाना रे।
वृद्ध भयो सब सुधि गई अब धर्म भुलाना रे॥निज० ॥3॥
गई गई अब राख रही तू समझ सियाना रे।
बुद्ध महाचंद्र विचारि निजपद नित्य रमाना रे॥निज० ॥4॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

सितम्बर : 1973] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (341) एक अंक 35 पैसा [भाद्रपद : 2499

धर्मी का वेदन

❀ धर्मी को दु:ख होता है ? हाँ; धर्मी को भी जितना राग है, उतना दु:ख है।

❀ उस दु:ख का वेदन धर्मी को होता है ? ...हाँ, जितना राग है, उतने दु:ख का वेदन है। राग का वेदन तो दु:खरूप-आकुलतारूप ही होता है। राग का वेदन कहीं शांतिरूप नहीं होता।

❀ उस राग के दु:ख के समय धर्मी को शांति का वेदन है या नहीं ?

...है, उस समय भी स्वभाव के श्रद्धा-ज्ञानादिरूप जो शुद्ध परिणमन वर्तता है, उसमें तो अपूर्व आत्मशांति का वेदन है, उसमें कहीं दु:ख नहीं, परंतु राग में तो दु:ख ही है, उसमें कहीं शांति नहीं है।

❀ तो एक ओर सम्यग्दर्शनादि की अपूर्व शांति का वेदन, और दूसरी ओर राग की आकुलता के दु:ख का वेदन—यह दोनों वेदन धर्मी को एकसाथ वर्तते हैं ?—हाँ; साधक की पर्याय में शांति और दु:ख दोनों का वेदन एकसाथ वर्तता है। यदि शांति का किंचित् वेदन न हो और केवल दु:ख का ही वेदन हो, तब तो अज्ञान है और जो पूर्ण शांति का वेदन हो और दु:ख का वेदन किंचित् न हो तो वहाँ पूर्णदशा होती है; साधक की दशा में तो प्रचुर शांति का वेदन होने पर भी रागादि के किंचित् दु:ख का वेदन भी है—ऐसी मिश्रधारा साधक को होती है।

❀ जितना राग है, उस राग को यदि दोषरूप-दु:खरूप न माने और उस राग में भी यदि शांति माने तो उसे अपने दोष देखना नहीं आता; उसने तो दोष को गुण में मिला दिया। गुण-दोष का सच्चा पृथक्करण ज्ञानी ही कर सकते हैं। रागादि दोषों के किसी अंश को वे गुण में नहीं मिलाते।

❀ जिसे शांति का किंचित् वेदन न हो, वह अज्ञानी है, जिसे अशांति का किंचित् वेदन न हो वह वीतराग है। विशेष शांति के साथ किंचित् अशांति का वेदन हो-वह साधकदशा है।

— इसप्रकार अपनी पर्याय में शांति-अशांति का वेदन जिसप्रकार वर्तता है, तदनुसार धर्मी जानता है।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

सितम्बर : 1973 ☆ भाद्रपद : वीर नि० सं० 2499, वर्ष 29 वाँ ☆ अंक : 5

सच्ची शांति और आनंद का उपाय

इस संसार में अन्य गतियों की अपेक्षा दुर्लभ ऐसी मनुष्य गति पाकर चैतन्यस्वरूप अपना आत्मा क्या वस्तु है, उसे जो जीव पहिचानते हैं, उनका मनुष्यजन्म सफल है। आत्मा को जाने बिना मनुष्यजन्म और पशुजन्म में अंतर ही क्या रहा ? पशु भी अपना जीवन विषय-कषाय में बिताते हैं, और मनुष्य होकर भी विषय-कषाय में जीवन व्यतीत करे तो दोनों में क्या अंतर रहा ? अरे, पुण्य-पाप से भिन्न मेरा अंतरतत्त्व क्या है कि जो मुझे शांति और आनंद प्रदान करता है ! ऐसा विचार करना चाहिए। जीव ने पुण्य-पाप अनंतबार किये, तथापि जीव को किंचित् शांति प्राप्त नहीं हुई। उस पुण्य-पाप के कर्तृत्व से रहित मेरा चैतन्यतत्त्व है-जिसका स्वाद मधुर चैतन्यरस से भरपूर है। पुण्य-पाप के आकुलतामय स्वाद से चैतन्य का स्वाद बिल्कुल भिन्न प्रकार का है। पुण्य-पाप की मृगमरीचिका में अनंत काल तक दौड़ने पर भी उसमें शांति प्राप्त नहीं हुई। चैतन्यसरोवर अंतर में शांतरस से भरपूर है। उसमें उपयोग को लगाने से अनमोल शांति और इंद्रियातीत आनंद प्राप्त होगा।

पर्यूषण पर्व का पावन प्रसाद

पर्यूषण पर्व के दिनों में 'स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा' में से दस धर्मों पर प्रवचन हुए थे। तदुपरांत श्री नियमसार के परमावश्यक अधिकार पर तथा श्री समयसारजी के सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन होते थे; उनका संक्षिप्त सार प्रसादरूप में यहाँ दिया जा रहा है।

❀ जैनधर्म के पर्यूषण पर्व में आज दस धर्मों में से उत्तम क्षमाधर्म का प्रथम दिन है। अन्य जीवों के प्रति क्रोध करके हे जीव! तू अपनी शांति को हानि मत करना। जगत में प्रतिकूलता का संयोग आये अथवा कोई निंदा करे, तो तू उसके वश होकर अपने उत्तममार्ग को मत छोड़ना; क्रोध करके अपने धर्मवृक्ष को मत जलाना। उत्तम क्षमादि धर्मों की आराधना में अपने आत्मा को परमभक्ति से लगाना। क्रोध द्वारा अपनी शांति को भस्म मत करना। क्रोधरहित चैतन्यस्वभाव की आराधना ही उत्तम क्षमाधर्म है। वीतरागी मुनि ऐसे उत्तम क्षमादि धर्मों के आराधक हैं, और उन धर्मों को भक्तिपूर्वक जानकर श्रावकों को भी एक अंश में उनकी आराधना होती है। जितना वीतरागभाव हुआ, उतनी निरंतर आराधना है।

❀ निजस्वरूप से बाहर आकर एक विकल्प भी उठे तो वह दोष है, उसमें कोलाहल है, उसमें चैतन्य की शांति नहीं है; इसलिये हे मुमुक्षु! विकल्प के कोलाहल से भिन्न ऐसे अपने शांत चैतन्यतत्त्व को स्वाश्रित ध्यान से ध्या!—उसी में परम सामायिक एवं उत्तम क्षमा है।

❀ शांति के लिये दुनिया को तो भूल... अंतर के अपने विकल्पों के कोलाहल से भी दूर हो... और एकत्व में शोभायमान अपने आत्मा को निर्विकल्पध्यान में ध्या! कदाचित् तेरी शक्ति अल्प हो और ध्यान में विशेष एकाग्र न रह सकता हो, तब तक ऐसे स्वाश्रित वीतरागमार्ग

की श्रद्धा तो अवश्य करना। श्रद्धा में इससे विपरीत मत मानना; पराश्रितभाव में कल्याण नहीं मानना। परमात्मतत्त्व की श्रद्धा रखेगा, तब भी तेरा आराधकभाव बना रहेगा और अल्पकाल में मोक्ष होगा।

❀ सम्यग्दर्शन भी धर्मात्मा का आवश्यक कार्य है। ऐसे सम्यग्दर्शन के उपरांत यदि ध्यान में एकाग्रतारूप सामायिकादि हो सके तो यह उत्तम है, वह तो साक्षात् मोक्षमार्ग है; और ऐसा न हो सके तो सम्यक्त्व में तो तू किंचित् शिथिल मत होना। विकल्प हो, उसकी मिठास मत करना; उससे भिन्न चैतन्यस्वरूप की बराबर श्रद्धा करना।

❀ सहज ज्ञान-आनंदमय निजपरमात्मतत्त्व के सन्मुख होकर जो निश्चल-स्थिर परिणाम हों, वही भव को छेदने के लिये कुठार है। अंतर में स्थिर होने पर जो शांति निष्क्रिय (अर्थात् विकल्प की क्रिया से रहित) दशा हुई, वही परम आवश्यक है; उससे सामायिक की पूर्णता होती है; इसलिये उसमें विकल्प की विषमतारहित परम शांति और समता है, वह मुमुक्षु को परम उपादेय है—उसका फल निर्वाण है। इसके अतिरिक्त बाह्य आवश्यक के जो विकल्प हैं, वे तो कोलाहलमय हैं, उनका फल तो अनुपादेय है, उनमें शांति नहीं है—विकल्पों में तो अशांति है।

❀ शांति तो स्वाश्रितभाव में है। जितना स्वाश्रय हो, उतनी ही शांति है, उतना ही निर्वाणमार्ग है और वही उपादेय है। अंतर में एकाग्रता होने पर एक विकल्प भी न उठे, ऐसा पूर्ण स्वाश्रयभाव मोक्ष के लिये मुनियों का परम आवश्यक कार्य है; और श्रावक-धर्मात्मा को भी निजपरमात्मतत्त्व की सम्यक्-श्रद्धा तथा सम्यग्ज्ञानपूर्वक जितने अंश में वीतरागभाव वर्तता है, उतना ही आवश्यक है; उसके सिवा अन्य कोई रागादिभाव, वह कहीं धर्मी का आवश्यक नहीं है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है।

❀ आज तो ऐसे धर्म की साधना का मौसम अर्थात् पर्यूषण है, मोक्ष के मार्ग का मौसम है। जिसने अंतर्मुख आत्मतत्त्व का आश्रय लिया, उसके आत्मा में सदा धर्म का मौसम है। अरे, अपने स्वभाव के सन्मुख होकर तू वर्तमान में धर्म की कमायी कर ले। यह धर्म का उत्तम अवसर है।

❀ आत्मा के गुण आत्मा के आधार से हैं; आत्मा का कोई गुण किसी अन्य के आधार से या

राग के आधार से नहीं है। किसी जीव के सम्यक्त्वादि का घात हो, उससे कहीं उस जीव को शरीर की क्रिया का या शुभराग का घात नहीं हो जाता। वह क्रिया ज्यों की त्यों होने पर भी अज्ञानी को सम्यक्त्वादि का घात होता है; क्योंकि सम्यक्त्वादि धर्म जीव के हैं, वे कहीं शरीर की क्रिया के आधार से या राग के आधार से नहीं हैं। सम्यक्त्वादि धर्म यदि शरीर के आधार से हों तो, उन सम्यक्त्वादि का घात होने पर शरीर का और राग का भी घात हो जाना चाहिये।

❀ तथा शरीर की क्रिया के या शुभराग के घात से कहीं जीव के सम्यक्त्वादि गुणों का घात नहीं हो जाता; शरीरादि का घात होने पर जीव के सम्यक्त्वादि धर्म ज्यों के त्यों रहते हैं; क्योंकि सम्यक्त्वादि धर्म जीव के हैं, वे कहीं शरीर की क्रिया के या राग के आधार से नहीं हैं। सम्यक्त्वादि धर्म यदि शरीर के आधार से हों तो उन शरीरादि का घात होने से सम्यक्त्वादि का भी घात हो जाना चाहिये। परंतु ऐसा तो दिखायी नहीं देता।

❀ इसप्रकार जीव के सम्यक्त्वादि धर्मों को और राग तथा शरीरादि की क्रिया को अत्यंत भिन्नता है, उनमें आधार-आधेयपना नहीं है। जीव के सम्यक्त्वादि धर्म जीव के ही आधार से हैं, पर के आधार से नहीं हैं।—ऐसा भेदज्ञान करनेवाला जीव अपने सम्यक्त्वादि समस्त गुणों के लिये अपने स्वद्रव्य का ही आश्रय करता है; अपने गुणों में किसी भी परद्रव्य का या राग का आश्रय वह नहीं मानता।

❀ ऐसा भेदज्ञानी जीव अपने गुण अपने ही आत्मा में जानता होने से उसे कोई परद्रव्य इष्ट-अनिष्ट दिखायी नहीं देता; परद्रव्य मेरा कोई गुण नहीं देता, फिर उस पर राग कैसा? तथा परद्रव्य मेरे किसी गुण का घात नहीं करता, फिर उस पर द्वेष कैसा?—ऐसे वीतराग अभिप्राय द्वारा धर्मी जीव ज्ञानचेतनारूप परिणमित होता हुआ पर का संबंध छोड़ता है। ज्ञानचेतना के सम्यक्त्वादि भावों में उसे रागादि हैं ही नहीं। अवस्था में जो किंचित् रागादि दिखायी देते हैं, वे ज्ञानचेतना में तन्मयरूप से नहीं हैं परंतु भिन्नरूप से हैं।

❀ धर्मी कहता है कि अहो! हमारे ज्ञानादि समस्त गुण अपने आत्मा के ही आश्रय से परिणमित हो रहे हैं—ऐसा हम सम्यक्प्रकार से देखते हैं; अपना सम्यक्त्वादि कोई गुण हम परद्रव्य के आश्रय से होना नहीं देखते। स्वाश्रयरूप से उत्पन्न होनेवाले सम्यक्त्वादि

निर्मल गुणों में रागादि की उत्पत्ति है ही नहीं, स्वाश्रित भावों से वह बाहर ही है।—ऐसे भेदज्ञान द्वारा ज्ञानरूप से ही उत्पन्न होता हुआ जीव राग-द्वेष का सर्वथा क्षय करके केवलज्ञान-ज्योति प्रगट करता है।

❀ परद्रव्य को अपने गुण-दोष का उत्पादक माननेवाले जीव को कभी राग-द्वेष का नाश नहीं होता; वह तो पर का ही आश्रय करता हुआ, पर से ही अपने गुण-दोष होना मानता हुआ अज्ञानभावरूप ही परिणमित होता है। भेदज्ञान के बिना वह मोहसमुद्र को पार नहीं कर सकता।

❀ आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! परद्रव्य को राग-द्वेष का उत्पादक तू किंचित् नहीं मानना। अपने ही गुण-पर्यायों में द्रव्य स्वयं उत्पन्न होता है; अपनी पर्याय में उत्पन्न होनेवाले किसी द्रव्य की पर्याय को दूसरा उत्पन्न करे, ऐसी किसी वस्तु में योग्यता नहीं है। सर्व द्रव्यों के स्वभाव से ही अपनी पर्याय का उत्पाद होता है, ऐसा वस्तुस्वरूप देखने में आता है। घटरूप से मिट्टी उत्पन्न होती है, कुम्हार नहीं; उसीप्रकार सम्यक्त्वादि गुणरूप या रागादि दोषरूप से आत्मा उत्पन्न होता है, परद्रव्य नहीं।

❀ हे भाई! एकबार ऐसा स्व-पर का स्पष्ट भेदज्ञान तो कर। भेदज्ञान करते ही तुझे परद्रव्य के प्रति राग-द्वेष का अभिप्राय छूट जायेगा और वीतरागी ज्ञानदशा आदि गुण प्रगट होंगे। मेरे गुण को या दोष को परद्रव्य तो करता नहीं है, फिर उस पर राग-द्वेष करने का प्रयोजन कहाँ रहा? गुण प्रगट करने तथा दोष का क्षय करने के लिये मुझे अपने चैतन्यमय स्वद्रव्य का ही आश्रय करना रहा।—ऐसा वीतरागी स्वाधीन वस्तुस्वरूप सम्यग्दृष्टि ही जानता है। अपना चैतन्यतत्त्व ही सम्यग्दृष्टि का विश्रामस्थल है; पर में कहीं विश्राम नहीं है।

❀ जिसे थकान लगे, वह विश्रामस्थल ढूँढ़ता है; उसीप्रकार भव में भटकते-भटकते थका हुआ जीव राग-द्वेष से छूटकर चैतन्यधाम में विश्राम लेता है। पुण्य-पाप तो अनादि से किये, परंतु उनमें कहीं विश्राम नहीं मिला, शांति नहीं मिली; तो उनसे भिन्न प्रकार का ऐसा तेरा चैतन्यस्वभाव, उसमें उतरकर विश्राम ले, उसमें तुझे परम शांति मिलेगी।—पूर्वकाल में जो कभी नहीं किया, ऐसा अवश्य करनेयोग्य यह अपूर्व कार्य है। हे मुमुक्षु! मोक्ष के लिये शुद्धोपयोगरूप होकर तू यह अपूर्व कार्य कर। यही तुझे आवश्यक है।●

जिसके भव का अंत आये और
चैतन्य के असंख्यप्रदेश में आनंद की लहरें उठें ऐसी

भक्ति

एक ओर श्रावण के उत्सव मनाये जा रहे थे, मेघवृष्टि पृथ्वी को तृप्त कर रही थी... दूसरी ओर प्रवचन में वीतरागी परमात्मभक्ति और ज्ञान के अगाध सामर्थ्य के वर्णन द्वारा चैतन्यगगन से झरती शांतरस की धाराएँ भव्य जीवों के अंतर को तृप्त करती थीं। दूरवर्ती आत्मजिज्ञासु भी इस अपूर्व आत्मरस का पान करने के लिये सदा आतुर होते हैं। वे भी इस लेख द्वारा थोड़ से मधुर शांतरस का पान करके तृप्त होंगे। यहाँ श्रावण महीने की उस महान अध्यात्मवृष्टि में से झेले गये 101 बिन्दु दिये गये हैं। उसका रसास्वादन आपको अवश्य ही आनंदित करेगा।

— ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

[श्रावण मास में हुए नियमसार के भक्ति अधिकार तथा
समयसार के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचनों से दोहन]

—००—

* अपने परमात्मतत्त्व के सन्मुख होकर जो सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-आचरणरूप परिणामों का भजन, वह भक्ति है; श्रावक और श्रमण शुद्धरत्नत्रय द्वारा ऐसी भक्ति करते हैं, वह निर्वाण के लिये भक्ति है। (1)

* धर्मी-श्रावक को जितने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्ध परिणाम हैं, उतनी निर्वाण की परम भक्ति है, उतना मोक्षमार्ग है। (2)

* परम नैष्कर्म्य (शुभाशुभ किसी भी कर्म से रहित) ऐसे मुनिवरों को भी रत्नत्रय की भक्ति होना कहा है;—वह भक्ति क्या रागमय है ? नहीं; रत्नत्रय की जितनी शुद्धता हुई, उतनी शुद्धरत्नत्रय की भक्ति है, वही निर्वाण-भक्ति है। यह भक्ति अपुनर्भव ऐसे मोक्ष का कारण है। श्रावक को भी सम्यक्त्वादि की जितनी शुद्धता है, उतनी भक्ति है। (3)

* ऐसी निर्वाणभक्ति किसी पर के आश्रय से नहीं होती, बाह्य में अन्य भगवान के आधार से भी ऐसी निर्वाणभक्ति नहीं होती, परंतु अंतर में अपने परमात्मा के सन्मुख होने पर ऐसी भक्ति होती है। स्वभाव में उपयोग को लगाने से ऐसी परम भक्ति होती है। ऐसी भक्ति द्वारा ऋषभादि जिनवर निर्वाणसुख को प्राप्त हुए; इसलिये तू भी उपयोग को अंतर्मुख करके ऐसी श्रेष्ठ भक्ति कर। (4)

* श्रावक भी शुद्धरत्नत्रय का भक्त है। सम्यक्त्वादि द्वारा जो शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करता है, उसकी आराधना करता है, वह श्रावक है। रत्नत्रय की आराधना के बिना श्रावकपना या मुनिपना नहीं होता। (5)

* शुद्धरत्नत्रय की सेवा-भक्ति अपने परमात्मतत्त्व की सन्मुखता द्वारा होती है। स्वसन्मुख होकर जिसने रत्नत्रय का सेवन किया, वह जीव राग का सेवन नहीं करता। शुभराग बीच में आ जाये, उसे वह जीव सेवन करने योग्य या मोक्ष का कारण नहीं मानता। राग, वह निर्वाण-भक्ति नहीं है। (6)

* ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वयं ज्ञानरूप होकर ज्ञान का सेवन करे, वही मोक्ष का कारण है। स्वयं ज्ञानस्वरूप होने पर भी, अज्ञानी ज्ञान का एक क्षण भी सेवन नहीं करता। ज्ञान का सेवन करे तो मोक्षमार्ग प्रगट हो। (7)

* गुण-गुणी को अभेद करके, अर्थात् द्रव्य-पर्याय को अभेद करके ही ज्ञान का सेवन होता है। इसप्रकार ज्ञान का सेवन किया, वह तो साधक हुआ, वह अनंत सिद्ध भगवंतों का कुटुंबी हुआ, उसने संसार के साथ संबंध तोड़ा और सिद्धपद के साथ संबंध जोड़ा है। (8)

* भगवंत जो करके निर्वाण को प्राप्त हुए, वह अपने में करना ही सच्ची निर्वाणभक्ति है, वही मोक्षगत पुरुषों की गुणभक्ति है। ऐसी गुणभक्ति, वह मोक्ष का कारण है। ऐसी गुणभक्ति राग द्वारा नहीं हो सकती, स्वभावसन्मुखता द्वारा ही होती है। (9)

* राग से आत्मगुणों की प्राप्ति मानना या राग को मोक्ष का कारण मानना, वह तो रत्नत्रयमार्ग की विराधना है; राग से धर्म माननेवाले जीव को सच्ची रत्नत्रय भक्ति नहीं होती, अर्थात् उसे रत्नत्रय की आराधना नहीं होती। (10)

* सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अंतर्मुख भाव द्वारा मोक्ष की आराधना ही मोक्ष की भक्ति है। श्रेणिकराजा भी क्षायिकसम्क्त्व द्वारा ऐसी मोक्षभक्ति करते थे। श्रावक को भी अंशत: रत्नत्रय की आराधना होती है, इसलिये उसे निर्वाण की भक्ति है। इसलिये वह भक्त है... भक्त है! (11)

* वीतरागी पुरुषों की परमार्थभक्ति यह है कि जिस कारणपरमात्मा की शुद्धरत्नत्रय द्वारा आराधना करके वे सिद्ध हुए, उस कारणपरमात्मा के सन्मुख होकर स्वयं उसकी आराधना करना। ऐसी आराधना-भक्ति, वह भवभय को हरनेवाली है। शुद्ध सम्यक्त्वादि द्वारा ऐसी आराधना करनेवाला जीव भक्त है...! वह मोक्ष का साधक है... साधक है! (12)

* शुद्धरत्नत्रय की आराधनारूप वह भक्ति धर्मी को निरंतर होती है। अमुक काल में ही ऐसी भक्ति होती है—ऐसा नहीं, परंतु जितनी शुद्धि है, उतनी भक्ति तो निरंतर है।—ऐसी अतुल भक्ति निरंतर कर्तव्य है। (13)

* श्रावक हो या श्रमण हो, उसे रत्नत्रय की जितनी शुद्धि है, उतना तो उसका चित्त पुण्य-पाप से मुक्त ही है। सम्यक्त्वादि शुद्धपरिणति में राग-द्वेष कैसे? भले श्रावक हो, पुण्य-पाप होते हों, परंतु वे पुण्य-पाप शुद्धपरिणति से तो भिन्न ही हैं। शुद्ध परिणति तो भवभय का अंत करनेवाली एवं मोक्ष को साधनेवाली है। इसलिये ऐसी परिणतिवाला जीव सदा भक्त है-भक्त है; उसे निरंतर निर्वाण-भक्ति अर्थात् मोक्ष की आराधना वर्तती ही रहती है। (14)

* वाह, देखो यह धर्मी-श्रावक की दशा! उसकी रत्नत्रयपरिणति में चैतन्यपरमात्मा सदा समीप है, और रागादि भाव उसकी परिणति से अत्यंत दूर हैं। अरे, अज्ञानी को रागादि पुण्य-पाप निकट और परमात्मा दूर प्रतीत होता है—उसे परमात्मा की भक्ति कैसी? (15)

* परमात्मा का भक्त अर्थात् मोक्ष का साधक धर्मी जीव कहता है कि मेरा कारणपरमात्म मेरे रत्नत्रय में अत्यंत समीप है, मेरी परिणति में वह अभेदरूप विद्यमान वर्तता है, और

पुण्य-पाप तो मेरी चैतन्यपरिणति से बिलकुल भिन्न है।—ऐसा धर्मी जीव, वह सर्वज्ञ प्रभु का पुत्र है। (16)

* मोक्षगामी जीव अभेदपरिणति द्वारा कारणपरमात्मा की आराधना करके सिद्ध हुए हैं; उनकी भक्ति करनेवाला भी ऐसा जानता है कि अपने कारणपरमात्मा को अंतर्मुख श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की शुद्ध अभेद परिणति द्वारा आराधता हूँ—वह मुझे मोक्ष का कारण है; इससे विरुद्ध माने उसे मोक्षगामी पुरुषों की सच्ची भक्ति नहीं होती। श्रद्धा-ज्ञान-शांति की अभेद परिणतिवाला जीव निरंतर भक्त है-भक्त है! वह जिनेश्वरदेव का लघुनंदन है। (17)

* देखो, सिद्ध की भक्ति करनेवाला जीव पहले तो यह जानता है कि उन्होंने कैसे सिद्धि प्राप्त की।—अंतर्मुख शुद्ध रत्नत्रय की अभेद परिणति द्वारा कारणपरमात्मा का अनुभव करके वे सिद्ध हुए हैं। इसलिये ऐसी कारणपरमात्मा की अभेद आराधना, वह निश्चय से मुक्ति का कारण है, वह परमार्थभक्ति है। (18)

* मोक्षगामी पुरुषों की भक्ति करनेवाला जीव उन मोक्षगामी पुरुषों के गुणों को जानता है, उन गुणों को जानकर उनके प्रति जो प्रमोदभाव प्रगट होता है, वह सिद्धों की परमभक्ति है।—यह व्यवहारभक्ति है। ऐसी भक्तिवाला जीव भी ऐसा जानता है कि मैं जिनकी भक्ति करता हूँ, वे अभेद रत्नत्रय द्वारा ही मुक्ति को प्राप्त हुए हैं और मेरे लिये भी यही मुक्तिमार्ग है।—इसप्रकार उनके मार्ग का सेवन ही भक्ति है। (19)

* सीताजी महासती धर्मात्मा थीं, जिनके गर्भ में लव-कुश जैसे दो मोक्ष के रत्न पड़े थे। जब रामचंद्रजी ने सीताजी को वन में छोड़ देने का आदेश दिया, तब वन में सीताजी रामचंदजी को ऐसा संदेश भिजवाती हैं कि लोकनिंदा के भय से मेरा त्याग तो किया, परंतु लोग यदि जैनधर्म की निंदा करें तो उसे सुनकर धर्म का त्याग न करना। मुनिवर आदि चार संघ की भक्ति करना।—ऐसा शुभ विचार आया, वह व्यवहारभक्ति है; उसी समय राग से भिन्न आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-आनंद की जितनी श्रद्धा वर्तती है, उतनी परमार्थभक्ति है। गर्भ में विद्यमान लव-कुश दोनों पुत्र धर्मात्मा, चरमशरीरी थे, उन्हें भी उस समय शुद्ध सम्यक्त्वादिरूप निर्वाणभक्ति वर्तती थी। इसप्रकार श्रावकों को भी

शुद्धरत्नत्रय की निश्चयभक्ति होती है और उतनी मोक्ष की आराधना होती है। (20)

* जब सीताजी को रावण ले गया था, तब रामचंद्रजी वन में चारों ओर ढूँढ़ते थे, तथापि उस समय अंतर में निज कारणपरमात्मा के श्रद्धा-ज्ञान-शांति से जितनी अभेद रत्नद्वय की आराधना वर्तती है, वह निश्चय से मोक्षभक्ति है। और वह शुद्ध परिणति तो सीताजी के प्रति रागादि से भी भिन्न है, राग का प्रवेश सम्यक्त्वादि शुद्ध परिणति में नहीं हैं। (21)

* अहा, सम्यग्दृष्टि को अपना चैतन्यप्रभु सदा प्रत्यक्ष है। उसकी शुद्ध परिणति एक क्षण भी निज कारणपरमात्मा से भिन्न नहीं होती। ऐसी अभेदरूप शुद्ध रत्नत्रयपरिणति द्वारा कारणपरमात्मा की आराधना से ही अनंत जीव सिद्ध हुए हैं।—इसप्रकार उनके केवलज्ञानादि गुणों द्वारा उन्हें पहिचानना, वह व्यवहारभक्ति है। गुणों की पहिचान के बिना भक्ति किसकी? (22)

* साधक जीव स्वयं मोक्ष का आराधक होकर मोक्षगामी जीवों की भक्ति करता है, उसे निश्चय-व्यवहार दोनों भक्ति यथार्थरूप में होती हैं। जितनी रागरहित अभेद परिणति हुई, वह निश्चय-सिद्धभक्ति है, और वह निर्वाण का कारण है। पंचपरमेष्ठी आदि के प्रति जितना राग है, वह तो पुण्यबंध का कारण है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। (23)

* दुनिया में सबसे ऊँचे स्थान (लोकाग्र) पर सिद्धभगवंत निवास करते हैं, और वे ही संसार में सर्वश्रेष्ठ गुणवाले हैं। ऐसे सिद्धभगवंत किसप्रकार सिद्ध हुए? कि शुद्धात्मभाव से सिद्ध हुए हैं। उन्हें पहिचानकर मैं तो सिद्धभगवंतों को निरंतर नमन करता हूँ—अर्थात् जैसी शुद्धात्मभावना उन्होंने की, वैसी ही शुद्ध भावना मैं निरंतर भाता हूँ।—ऐसी आत्मभावना से आनंद की पुष्टि होती है।—यही निर्वाणभक्ति है। (24)

* अहा, सिद्ध भगवंतों के महान अतीन्द्रिय परमसुख की क्या बात? इस बात का जिसने स्वीकार किया, वह जीव शुभराग को मोक्ष का साधन नहीं मानता, वह तो जानता है कि अपने शुद्धात्मतत्त्व की भावना से ही मुझे ऐसे महान सुख का अनुभव होता है, इसलिये शुद्धात्मभावनारूप परिणति ही परमार्थ सिद्धभक्ति है। (25)

* जिसने अंतर्मुख होकर कारणपरमात्मा का स्वीकार किया और उसमें अपनी परिणति को

अभेद किया, उसने सिद्धपुरी में जाने के लिये प्रथम श्रेणी की टिकट का आरक्षण कर लिया है... उसने मोक्ष में जाने की मंगल-यात्रा प्रारंभ कर दी है और अल्पकाल में सिद्ध बनना निश्चित हो चुका है।—इसका नाम सिद्धभक्ति है। सिद्धभक्ति कहो, आत्मा की आराधना कहो, या रत्नत्रय कहो।—ऐसी दशा जिसने प्रगट की, वह मुनि और वह श्रावक निरंतर भक्त है-भक्त है, वह प्रतिक्षण आत्मा के सिद्धपद को साध रहा है। (26)

* सिद्ध भगवंत इंद्रियों का विषय नहीं हैं, वे अतीन्द्रिय-अशरीरी हुए हैं। छद्मस्थ के ज्ञान में वे प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष हैं। साधक जीव अपने आत्मा को स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष करता है, वह परमार्थ-सिद्धभक्ति है और बाह्य में सिद्धभगवंतों की ओर लक्ष जाता है, वह परोक्ष है, इसलिये वह व्यवहारभक्ति है। (27)

* सिद्ध भगवंत जगत में सबसे श्रेष्ठ हैं, वे प्रसिद्ध हैं। ऐसे सिद्ध भगवंतों के गुणों को पहिचानकर, उनके समान अपने कारणपरमात्मतत्त्व की भावनारूप अभेदरत्नत्रय-परिणति, वह आत्मा का परमार्थवात्सल्य है, उसमें आत्मा की रक्षा है। अहा, ऐसी अभेदरत्नत्रयपरिणति द्वारा आत्मसाधना करनेवाले सात सौ मुनिवरों की रक्षा का आज दिवस है। (श्रावण शुक्ला पूर्णिमा) (28)

* जिससे निज आत्मा की प्राप्ति हो, आत्मा के आनंदरूपी अमृत का जिसमें स्वाद आये, उसका नाम निजपरमात्मा की भक्ति है। राग का स्वाद, वह परमात्मा की भक्ति नहीं है; अंतर में अपने परमात्मतत्त्व की ओर उन्मुख होकर उसमें से आनंदरस का पान करना, वह निजपरमात्मा की भक्ति है। (29)

* निर्वाणभक्ति करने के लिये आत्मा को कहाँ स्थापित करना? रागरहित शुद्ध रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग-पर्याय में आत्मा को स्थापित करने से आत्मा के आनंदरस का स्वाद लिया जाता है, वही मुक्ति की परमभक्ति है। परमात्मा की भक्ति कहो, मोक्ष की भक्ति कहो, रत्नत्रय की आराधना कहो अथवा आनंदरस का अनुभव कहो—सबका इसमें समावेश है। (30)

* द्रव्य में पर्याय को स्थापित करना कहो, या पर्याय में द्रव्य को स्थापित करना कहो—वह

दोनों एक हैं; क्योंकि अंतर की अनुभूति में 'यह द्रव्य और यह पर्याय' ऐसा भेद कहाँ है ? वहाँ तो अभेद अनुभूति का आनंद है। समयसार में दर्शन-ज्ञान-चारित्र-पर्याय में स्थित आत्मा को स्वसमय कहा है, तथा 'तू स्थाप निज को मोक्षपंथ में'—ऐसा कहा है। इसप्रकार निर्मल रत्नत्रयरूप अभेद परिणति में आत्मा की स्थापना करना, वह परमात्मा की परमभक्ति है। उसमें राग नहीं, उसमें आनंद का अमृतरस पिया जाता है। (31)

* आत्मा के सहज गुण और उसकी निर्मल परिणति, वे किसी अन्य की सहायता से रहित असहाय हैं। आत्मानंद के अनुभव में अन्य किसी की सहायता नहीं है, शुभराग की सहायता नहीं है।—ऐसे असहाय (स्वाधीन) गुणवाले आत्मा की प्राप्ति वीतरागरत्नत्रय में आत्मा को स्थापित करने पर होती है। (32)

* वाह! आत्मा को पंचपरमेष्ठी के साथ बैठाकर, आत्मानंद के घूँट पीते-पीते मोक्ष की कैसी भक्ति की है ? इस भक्ति में राग नहीं है, यह तो वीतरागी आनंदवाली भक्ति है। (33)

* जिसकी भनक में भगवान होने का विश्वास हो जाये-ऐसा महान आत्मा है। जिस आत्मा के स्वभाव की महिमा सुनते हुए भी ऐसा प्रमोद और शांति की भनक आये, उसके साक्षात् अनुभव के आनंद की तो बात ही क्या ?—इसप्रकार चैतन्यस्वरूप की परम महिमा भासित हो तो उसमें अभिमुख होकर आनंदरस के घूँट पिये।—इसका नाम परमात्मा की परम भक्ति है। ऐसी भक्ति द्वारा अपने सहज चिदानंदतत्त्व की प्राप्ति होती है। (34)

* अहा, देखो तो आचार्यदेव ने परमात्मतत्त्व की भावना का कैसा बहुमान किया है! निजभावना के हेतु इस परमागम की रचना की है, दुनिया को प्रसन्न करने के लिये नहीं। दुनिया भले सुन ले कि ऐसा अद्‌भुत परमात्मतत्त्व है, वही भावना करनेयोग्य है। (35)

* भाई, तुझे भक्ति करना है न! तो आत्मा को आत्मा में ही रखकर ऐसी भक्ति कर कि जिससे मुक्ति की प्राप्ति हो। आत्मा को राग में रखकर भक्ति करने से कहीं मुक्ति नहीं होती। वही भक्ति शोभा देती है कि जिससे आनंदमय मुक्ति प्राप्ति हो। (36)

* चैतन्यचमत्कारमय निज आत्मा की भक्ति से, अर्थात् उसमें पर्याय को स्थिर करने से,

अद्वितीय ऐसे निजघर की प्राप्ति होती है कि जो आनंदमय संपदा से सुशोभित है, और जिसमें कोई विपदा नहीं है। पर के शुभराग में कहीं आनंद नहीं, और उससे कहीं मोक्षघर में प्रवेश नहीं मिलता। मोक्षघर में जाना हो तो आत्मा को परभाव से भिन्न करके सम्यक्त्वादि निजभाव में युक्त कर। (37)

* उपयोग का आत्मस्वरूप में युक्त होना, वह योगभक्ति है। निर्विकल्प योगभक्ति में उपशांतरस झरता है। आसन्नभव्य जीव योगभक्ति द्वारा परम आनंद के साथ अपने परमात्मतत्त्व को जोड़ता है, अद्वैतरूप से उसका अनुभव करता है।—इसके अतिरिक्त अन्य रीति से योगभक्ति नहीं होती। ऐसे अद्वैत आनंदमय शुद्धोपयोगरूप जो भक्तियोग, वही योगियों को मोक्ष प्रदान करनेवाला है। (38)

* अहा, आत्मा की अद्भुत महिमा! इसके अतिरिक्त जगत में कहीं किसी वस्तु की महिमा आये, तो वह अपने उपयोग को वहाँ से हटाकर आत्मा में कैसे लगायेगा? अरे, अपने आत्मा के अतिरिक्त बाह्य में मेरे लिये कुछ है ही कहाँ? आनंद का भंडार आत्मा में भरा है। ऐसी अचिंत्य महिमा द्वारा आत्मा में उपयोग की एकाग्रता करना, वह योगभक्ति है। (39)

* अरे, जो ज्ञान आत्मा के आनंदस्वरूप में युक्त न हो, और आत्मा को भूलकर जो बाह्य में भटके, उसमें आत्मा का क्या हित? यह तो सब राग के प्रपंच हैं। चैतन्य को भूलकर बाह्य ज्ञातृत्व में जो संतुष्ट हो गया है, उसे तो पर में सुखबुद्धि है, वह अपने उपयोग को आत्मस्वरूप में नहीं लगाता, इसलिये उसे 'शुद्ध में उपयोगरूप भक्ति' कहाँ से हो? (40)

* शुद्ध-उपयोगरूप योगभक्ति तो महा आनंदमय है; ऐसी भक्ति में आत्मा को लीन करके आचार्य भगवान ने इस पंचम काल में वीतरागी अमृत की वर्षा की है और मुमुक्षु के आत्मा में आनंद का सुकाल कर दिया है। आत्मा में आनंद का संगीत बजे-ऐसी यह भक्ति है। धर्मी जीव आत्मा में आनंद का संगीत बजाता हुआ मोक्ष में चला जाता है। (41)

* अहा, यह आत्मयोग ही सच्चा योग है, उसमें चैतन्यपरिणति अपने आत्मबन्धु के साथ

एकाकार होकर उसकी आराधना करती है। ऐसी योगभक्ति, वह मुक्ति का आनंद देनेवाली है। (42)

* मुक्ति के कारणरूप अनुपम योगभक्ति का यह वर्णन है। योग अर्थात् युक्त करना—किसके साथ? परम समरसभावरूप आत्मा, जिसमें कोई विकल्प नहीं है, उसमें आत्मउपयोग को युक्त करना, वह अपूर्व योगभक्ति है। (43)

* आत्मा में एकाग्र होकर आत्मा शांतभावरूप से परिणमित हुआ, उस शांति के साथ संबंधवाला आत्मा अति आसन्नभव्य है; उसका अपूर्व वीतरागरत्नत्रयरूप भाव, वह मोक्ष की अपूर्व भक्ति है। (44)

* अनंतकाल में पहले जो कभी प्राप्त नहीं की, ऐसी अपूर्व शांति कैसे हो? उसकी यह बात है। अपना आत्मा परम समतारसस्वरूप है, उसमें चैतन्य के आनंद की लहर है। उसमें अंतर्मुख होने से आनंदमय मोक्षमार्ग प्रगट होता है। उसमें कोई बाह्य अवलंबन नहीं है। (45)

* बाह्य अवलंबन से जो अनंतबार कर चुका है, तथापि जिसमें शांति नहीं मिलती—उससे भिन्न जाति की यह कोई अपूर्व बात है। चैतन्य के समभावरूपी अमृत की यह बात है; उसमें अशुभ या शुभ सर्व विकल्पों का अभाव है, और निर्विकल्प आनंदमय समरस झरता है।—ऐसा वीतरागमार्ग है, और ऐसी वीतरागमार्ग की (रत्नत्रय की) भक्ति है। (46)

* अहा, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में तो आत्मा के परम आनंद का वेदन है। वही राग के अभावरूप भक्ति है। ऐसी भक्ति गृहस्थ-श्रावक को भी होती है। (47)

* सम्यग्दृष्टि को अपनी चैतन्यजाति कैसी है, उसका ज्ञान है। पूर्वकाल में भी मेरा आत्मा ऐसा था,—इसप्रकार चैतन्यजाति का तीनों काल का ज्ञान धर्मी को वर्तता है। पूर्व का भव कहाँ था-उन क्षेत्रादि का स्मरण हो या न हो, परंतु वर्तमान स्वसन्मुखपर्याय के द्वारा चैतन्यजाति का पूर्व का या भविष्य का भी ज्ञान करने की शक्ति साधक को है,—यह पारमार्थिक जातिस्मरणज्ञान है, और वह सर्व सम्यग्दृष्टियों को होता है। आत्मा की त्रैकालिकता के ज्ञान बिना सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। (48)

* मेरी चैतन्यजाति में पूर्व की अनंत पर्यायें हुईं और भविष्य की अनंत पर्यायें होंगी—उन तीनों काल की चैतन्यजाति को धर्मी जीव जान लेता है, वह परमार्थरूप जातिस्मरण है। ऐसे स्वजाति के स्मरण बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। भव संबंधी जातिस्मरण, वह अन्य प्रकार का है, और इस चैतन्य की स्वजाति का स्मरण, वह अपूर्व सम्यक्त्वादिरूप महा शांति से भरपूर है। (49)

* द्रव्य के सन्मुख होकर उसे जानते हुए उस द्रव्य की अपनी त्रैकालिक पर्यायों का भी ज्ञान उसमें आ गया; तीनों काल को वह एक काल में जान लेता है। (50)

* पूर्वभव का स्मरण वर्तमान में होता है, तो वह शक्ति तो वर्तमान पर्याय की है न! वर्तमान पर्याय में भी कितनी गंभीर शक्ति है!—कि वह तीनों काल की पर्याय सहित द्रव्य का निर्णय कर लेती है। द्रव्य-गुण की त्रैकालिक अपार शक्ति का निर्णय स्वसन्मुख वर्तमान पर्याय ने कर लिया है।—ऐसी स्वसन्मुख पर्याय, वह विकल्प से परे है, समरस से भरपूर है, वही परम योगभक्ति है;—ऐसी योगभक्ति अति आसन्नभव्य धर्मात्मा को होती है। (51)

* भविष्य की केवलज्ञानादि पर्यायें उस-उस काल मेरे इस स्वद्रव्य के अवलंबन से ही होंगी—इसप्रकार स्वद्रव्य को वर्तमान पर्याय ने अंतर्मुख होकर आधीन कर लिया, वहाँ केवलज्ञान का निर्णय उसमें आ जाता है। अरे, वर्तमान पर्याय इतनी विशाल शक्तिशाली है, तो तेरे अखंडस्वभाव के महिमा की क्या बात! ऐसा त्रैकालिक निर्णय करने की शक्ति क्या राग में है? क्या विकल्प में ऐसा निर्णय करने की शक्ति है?—नहीं। यह तो चैतन्य में स्वोन्मुख हुई ज्ञानपर्याय की शक्ति है। (52)

* देखो, भूत-भविष्य की चैतन्यजाति के निर्णयरूप ऐसा जातिस्मरण (स्वकीय चैतन्यजाति का अनुभव) सब सम्यग्दृष्टियों को होता है। वह अपनी चैतन्यजाति को तीनों काल स्वतंत्र जानता है। देखो, यह आत्मा की स्वतंत्रता! आज भारतवर्ष की स्वतंत्रता का दिन (15वीं अगस्त) है। उसका जुलूस लोग धामधूम से गाजेबाजे के साथ निकलते हैं, परंतु उसमें कोई सुख नहीं है। यह तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के वाद्य बजते हुए सिद्धपद में जाने का जुलूस निकालने की बात है। तीर्थंकरों के स्वाधीन मार्ग में

साधक जीव ज्ञानपर्याय के वाद्य बजाते हुए सिद्धपद में जा रहे हैं। (53)

* अरे प्रभु! तेरी एक ज्ञानपर्याय में भी कितनी अपार समृद्धि है! जिसकी पर्याय की शक्ति तीनों काल का निर्णय कर ले—ऐसा ज्ञानस्वभाव जिसे अंतर में जम जाये, उसे विकल्प टूटे बिना नहीं रहता। अंतर में चैतन्य के अवलंबन से विकल्प टूटकर अपने आनंद का अपूर्व विलास उसे प्रगट होता है। (54)

* हे भाई, अपने आत्मा की बात तूने अंतरंग से नहीं मानी, ऊपर-ऊपर से सुनकर हाँ कही है, परंतु अंतर से अर्थात् अंतर्मुख होकर तूने आत्मा का स्वीकार नहीं किया है; तूने आत्मा को राग में युक्त करके स्वीकार किया है, परंतु राग से पृथक् होकर आत्मा को आनंदमय निर्मल पर्याय में युक्त नहीं किया। यदि एकबार राग से पृथक् होकर अंतर में चैतन्यभाव का स्पर्श करके उसे स्वीकार कर तो तेरी मुक्ति हो जायेगी। (55)

* अहा, चैतन्य की अपार अनंत महिमा! उसका स्वीकार तो पर्याय में होता है न? भाई, ऐसे आत्मा में उन्मुख हुई पर्याय, वह तेरा मार्ग है; बाह्य में अन्यत्र तेरा मार्ग नहीं है। इसलिये अपने आत्मा को परम समरसी पर्याय में जोड़। (56)

* अपने शुद्धद्रव्य में परिणति को जोड़ और शुद्ध परिणति में द्रव्य को जोड़, इसलिये दोनों अभेद हुए। इसप्रकार हे जीव! अपने आत्मा को आत्मा में जोड़कर तू स्वद्रव्य की रक्षा कर। इसका नाम भगवान की भक्ति है, इसका नाम गुरु आज्ञा है, यही परमागम का रहस्य है। जिसने ऐसा किया, उसने सत्य की रक्षा की, उसने अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में लगाया। (57)

* चिदानंदस्वभाव में संपूर्ण अंतर्मुख होने पर परमार्थभक्ति होती है, किसी भी बहिर्मुख भाव द्वारा मोक्ष की परमार्थभक्ति नहीं होती। संपूर्ण अंतर्मुख पर्याय-उसमें एक विकल्प भी नहीं चल सकता; ऐसी पर्यय द्वारा अत्यंत अल्प समय में मोक्षदशा प्रगट होती है। समस्त तीर्थंकर भी पर्याय को अंतर्मुख करके ऐसी भक्ति द्वारा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। तू भी अपनी पर्याय को समरसभाव में युक्त करके ऐसी भक्ति कर। (58)

* भगवान! तुझे मोक्ष के मार्ग पर ले जाने के लिये यह आत्मवैभव दिया जाता है। चैतन्य

के अपार दहेज के साथ संत तुझे मोक्ष में बुलाते हैं। तू चैतन्यपरिणति के वैभव में आत्मा को जोड़कर मोक्षमार्ग में आ। (59)

* जिसप्रकार मिट्टी के कोरे घड़े पर पानी की बूँद गिरते ही उसे वह सोख लेता है, उसीप्रकार हे मुमुक्षु! चैतन्य की महिमारूप यह जलबिन्दु—उन्हें तू प्रेम से आत्मा में उतार ले। उन्हें उतारते-उतारते तेरा चैतन्यघट आनंदजल से भर जायेगा; चैतन्य की महिमा का मंथन करते-करते उसका अनुभव होगा। (60)

* वाह! सिद्धपुरी का मार्ग दिगंबर संतों ने खोला है। धर्मात्मा अपनी पर्याय में (शुभाशुभ राग रहित समरस पर्याय में) आत्मा को जोड़ते हैं और सिद्धपुरी के मंगल मार्ग पर प्रयाण करते हैं। हमने भी अपने आत्मा को ऐसी समरस पर्याय में मिलाया है, और हे भव्य जीव! तुम भी अपने आत्मा को ऐसी समरस पर्याय में परिणमित करके मोक्ष के मार्ग में चले आओ! (61)

* जगत के जीवों में से छह महीने आठ समय में छह सौ आठ जीव निरंतर मोक्ष में जा रहे हैं। छह महीने आठ समय में छह सौ आठ जीव मोक्ष प्राप्त करते हैं। ऐसी जो अखंड मोक्ष की धारा चल रही है, तू भी उसमें मिल जा...। इसप्रकार संत मोक्ष का आमंत्रण देते हैं। हमने तो मुक्ति का महोत्सव प्रारंभ किया है—तू भी उस महोत्सव में सम्मिलित हो जा। (62)

* जिनदेव और गणधरदेव समस्त गुणों को धारण करनेवाले हैं, उनके द्वारा प्रकाशित जो परम चैतन्यतत्त्व, उसरूप अपना आत्मभाव होना अर्थात् विपरीतता रहित उस तत्त्व के श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रतारूप आत्मभाव होना, वह परम योग है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र यह तीनों परम योग हैं। (63)

* परम योग अर्थात् उपयोग को अंतर्मुख करके आत्म-अनुभव करना, उस अनुभवरस में अनंतगुणों के रस का समावेश है। अनंतगुण के रस का आनंद आत्मा के अनुभव में है, वह अनुभवरस जगत में सर्वश्रेष्ठ है—

गुण अनंतकौ रस सबै, अनुभवरसके मांहिं;
तातें अनुभव सारिखो, और दूसरी नांहिं॥

जिसमें चैतन्य के अनंतगुणों के रस का समावेश है, ऐसा अनुभव ही मोक्षमार्ग है। आत्म-अनुभव के समान इस जगत में दूसरा कुछ नहीं है। (64)

* भाई, तेरी जो वस्तु है, तुझमें ही जो विद्यमान है, उसमें उपयोग को लगाने पर आनंद के वेदन सहित जो परम समता होती है, वह मोक्षगामी पुरुषों को परमार्थभक्ति है। जिसकी भक्ति करना हो, उसके समान गुण अपने में प्रगट करना, वह सच्ची भक्ति है। वीतराग की भक्ति वीतरागभाव द्वारा होती है, उससे विरुद्ध ऐसे रागभाव द्वारा वीतराग की भक्ति कैसे होगी? (65)

* अहा, आत्मा का परम अद्भुत आनंद वैभव जिस स्वानुभूति में प्रगट हुआ है, उसकी क्या बात! सर्वज्ञदेव परमगुरु और गणधरदेवादि परंपरागत गुरु—जो चैतन्य के आनंदरस में अत्यंत निमग्न थे, उनके अनुग्रहपूर्वक हमें तो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश मिला, तद्नुसार आत्मा के स्वसंवेदन द्वारा आत्मा के महा आनंद का अपूर्व वैभव हमें प्रगट हुआ।—ऐसा धर्मी निःशंक जानता है। उसने अपने आत्मा को ऐसी स्वानुभवपर्याय में लगा दिया है, वही परम भक्ति है। उसके द्वारा प्रसिद्ध ऐसी आत्मलब्धि (मुक्ति) प्राप्त होती है। (66)

* देखो, यह भक्ति! अरे जीव! तुझे कभी ऐसी परम भक्ति करना नहीं आया; बाह्य भक्ति के राग में संतोष मानकर तू रुका रहा, परंतु ज्ञानी के गुण को पहिचानकर वैसा आत्मभाव तूने अपने में प्रगट नहीं किया, इसलिये तद्गुण की लब्धि तुझे नहीं हुई। आत्मा में उपयोग लगाकर आत्मभावरूप भक्ति—जो कि मुक्ति का कारण है, उसकी बात है। भगवान ऐसी भक्ति द्वारा मोक्ष को प्राप्त हुए हैं—ऐसा जानकर तू भी ऐसी भक्ति कर। (67)

* आत्मा के यथार्थस्वरूप में उपयोग को लगाना, वह परम भक्ति है। जिसे तीर्थंकर और गणधर आदि के उपदेशानुसार यथार्थ तत्त्व का निर्णय होता है, अर्थात् जो जैनमार्गानुसार आत्मा का स्वरूप विपरीतता रहित जानता है—वह उसमें उपयोग को लगा सकता है, और उसे मोक्ष के कारणरूप वीतरागभक्ति होती है। (68)

* ऐसी भक्तिवाले धर्मी जीव कहते हैं कि हम तो भगवान तीर्थंकरदेव के उपजीवक हैं, हम तीर्थंकर के चरणों में निवास करनेवाले हैं, तीर्थंकरों की सेवा करनेवाले उनके सेवक हैं। वाह रे वाह! देखो, यह भगवान का भक्त! इसे जैन कहा जाता है। (69)

* भरतक्षेत्र के भक्त उपयोग को अंतर में लगाकर कहते हैं कि अहा भगवान! हम आपके चरण में निवास करनेवाले आपके उपजीवक हैं अर्थत् आपने जिस मार्ग की प्ररूपणा की है, आपने जो शुद्धचैतन्यतत्त्व बतलाया है, उसका आश्रय करके हम जीवित रहनेवाले हैं। रागमय जीवन हमारा जीवन नहीं है, चैतन्य के आश्रय से वीतराग रत्नत्रयरूप जीवन ही हमारा जीवन है। ऐसा जीवन व्यतीत करनेवाला वीतराग का दास, वह जैन है; वह भक्त है! (70)

* श्री गणधरदेव से लेकर अविरत सम्यग्दृष्टि तक के समस्त धर्मात्मा, वे सब तीर्थंकर प्रभु के उपजीवक जैन हैं। (71)

* एक समय की स्वसन्मुख पर्याय में पूर्ण आत्मा की स्वीकृति आ जाती है। पर्याय में ज्ञान-आनंद का जो स्वाद स्वसन्मुखता से आया है। वैसे ज्ञान-आनंदरस का समुद्र मैं हूँ—ऐसा गंभीर चैतन्यतत्त्व धर्मी की अनुभूति में आ गया है। (72)

* उस धर्मी ने स्वसन्मुख होकर अपनी पर्याय में चैतन्यप्रभु की प्रतिष्ठा की है। (73)

* अहा, आत्मा स्वयं अपने को स्वानुभूति पूर्वक स्वीकार करके परम स्वरूप से पर्याय में प्रकाशमान हुआ, फिर वहाँ भव क्यों रहेंगे? वह नि:शंक जानता है कि हमारी पर्याय में परमात्मा प्रकाशमान हुए हैं—प्रसिद्ध हुए हैं—प्रगट हुए हैं। हमारी पर्याय में परमात्मा विराजमान हैं; उसमें अब राग या भव नहीं रह सकते। हम जिननाथ के अनुयायी जैन हुए हैं। जैनमार्ग के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग की मान्यता, वह मिथ्यात्व है। (74)

* स्वसन्मुख होकर हम जैनमार्ग में आये हैं, अब हमारी पर्याय में भव का भाव नहीं रहेगा। परिणति तो राग से हटकर चैतन्यप्रभु के साथ जुड़ गई है—वहाँ अब भवदु:ख कैसे?—अवतार कैसे? वह तो आनंद करता-करता जैनमार्ग से मोक्षपुरी में चला जाता है। वह रत्नत्रय का भक्त है-भक्त है... मोक्ष का डंका उसकी पर्याय में बज रहा है।(75)

* गणधरादि जैन भगवंतों ने जो जीवादितत्त्व कहे, उनमें चैतन्य परमतत्त्व कहा है, उस चैतन्यतत्त्व को जिसने अपनी स्वानुभूति में प्रकाशमान किया, वह जैन हुआ, उसे भव का अभाव हो गया। भव का अभाव करनेवाला चैतन्यतत्त्व उसकी पर्याय में प्रगट वर्तता है। ऐसा जीव भगवान का भक्त है। उसे रत्नत्रयरूप निर्वाण-भक्ति निरंतर वर्तती है।

(76)

* निश्चय-भक्ति का संबंध अपने आत्मा के साथ है। आत्मसन्मुखतारूप यह भक्ति ही उत्तम भक्ति है। इस भक्ति में सर्व आत्मप्रदेशों में अत्यंत आनंदरूपी अमृत की धारा बहती है, और उससे आत्मा परितृप्त होता है। समस्त जिनवर ऐसी भक्ति करके मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। इसलिये हे भव्य महाजनों! तुम भी आत्मा की वीतरागी सुख प्रदेान करनेवाली ऐसी उत्तम भक्ति करो! (77)

* इस भारतवर्ष में ऋषभदेव से लेकर महावीर भगवान तक 24 तीर्थंकर जिनवर हुए हैं, और दूसरें भी अनन्त जिनवर भूतकाल में मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, उन समस्त जिनवरों ने जिस भक्ति द्वारा मोक्षसुख को प्राप्त किया उस भक्ति का संबंध अपने निज आत्मा के साथ ही था। शुद्ध उपयोग को निजात्मा में लगाकर उन्होंने आत्मा की परम भक्ति की, और उसके द्वारा मोक्षसुख प्राप्त करके, वीतरागी आनंदमय परम सुख के वेदन से वे परितृप्त हुए। ऐसा स्वरूप जानकर हे मुमुक्षु! तुम अपने उपयोग को शुद्ध आत्मा में लगाकर ऐसी भक्ति करो। (78)

[—शेष अगले अंक में]

यह मनुष्यपना प्राप्त करके अच्छा कार्य क्या करना

आत्म-अनुभव के समान श्रेष्ठ अन्य कोई कार्य नहीं है, इसलिये वही श्रेष्ठ कार्य करना। (वास्तव में शुद्धात्मा के अनुभवरूप जो समयसार, उससे उच्च अन्य कोई नहीं है)।

साधक जीव कर्तृनय-भोक्तृनय से आत्मा को कैसा जानता है ?

[गतांक से आगे]

ज्ञानी-साधक के श्रुतज्ञान में अनंत नय होते हैं, तथा उनके विषयरूप अनंत धर्म हैं। उनमें कर्तृनय-अकर्तृनय इत्यादि हैं और उन नयों के विषयरूप धर्म भी आत्मा की पर्याय में वर्तते हैं, उन्हें धर्मी जानता है।—उन्हें जानकर परभावों से भिन्न अपने शुद्धचैतन्य को प्राप्त करता है।

जिसप्रकार रंगरेज रंग का कर्ता है, उसीप्रकार कर्ता के नय द्वारा आत्मा रागादि का कर्ता है—ऐसा उसका एक पर्यायधर्म है, उसे धर्मी जानता है। मैं अनंत गुण का पिण्ड शुद्ध चिदानंद स्वभाव हूँ, मेरे शुद्ध चैतन्यद्रव्य में राग का अंश भी नहीं है, इसलिये राग का कर्तापना मेरे स्वरूप में नहीं है—ऐसी अंतर्दृष्टिपूर्वक, पर्याय में जो अल्प रागादि होते हैं, उन्हें भी साधक जीव अपना परिणमन जानता है—उसे प्रमाणज्ञानपूर्वक यह कर्तृनय होता है। राग से भिन्न चिदानंदस्वभाव की दृष्टि छोड़कर केवल राग के कर्तापने में रुके, उसे यह कर्तृनय नहीं होता।

पर का कर्ता हो, ऐसा कोई धर्म आत्मा में कभी है नहीं, और रागादि का कर्ता हो, ऐसा कोई स्वभाव द्रव्य में या गुण में नहीं है, वह तो उस पर्याय का उस समय का धर्म है। (यह विशेष लक्ष में रखना कि साधक को पर्याय में केवल राग का कर्तृत्व ही नहीं परंतु उसी समय पर्याय में जितनी शुद्धता है, उतना राग का अकर्तृत्व भी वर्तता ही है)। जीव की पर्याय में जो राग होता है, उसका कर्ता कौन? आत्मा स्वयं पर्याय में विकाररूप से परिणमित होता है, इसलिये आत्मा का ही वह धर्म है, उसका कर्ता आत्मा है, परंतु जड़कर्म उसका कर्ता नहीं है। यह साधक के नय की बात है। साधक के श्रुतज्ञान में ऐसे नय होते हैं। सिद्ध भगवान को राग और नय भी नहीं हैं। जिसे अभी पर्याय में राग होता है, ऐसा साधक जीव कर्तृनय से ऐसा जानता है कि यह राग है, उसका कर्ता मैं हूँ; दूसरा कोई उसका कर्ता या करानेवाला नहीं है। उसीप्रकार मेरे त्रिकाली चैतन्यस्वभाव में इस राग का कर्तापना नहीं और पर्याय में जितनी

शुद्धता हुई है, उसमें भी राग का कर्तापना नहीं है—ऐसा जानना, वह अनेकान्त है। केवल कर्तृत्व को ही जाने, और उसी समय अकर्तृत्व को न जाने अथवा सर्वथा अकर्ता को जाने और पर्याय में जितना राग का कर्तृत्व वर्तता है, उसे न जाने—तो प्रमाणज्ञान अर्थात् वस्तु का सच्चा ज्ञान नहीं होता, और वस्तु के सच्चे ज्ञान के बिना शुद्ध आत्मा की प्राप्ति नहीं होती।

समयसार के परिशिष्ट में चैतन्यपरिणमन में उल्लसित जो 47 शक्तियों का वर्णन किया है, वह तो त्रिकाली स्वभावरूप धर्म हैं, और उनका निर्मल परिणमन हुआ, उसकी बात है; उसमें विकार नहीं आता। वहाँ 42 वीं शक्ति में जो कर्तृत्वशक्ति का वर्णन किया है, वह कर्तृत्वशक्ति तो सर्व जीवों में है, सिद्ध में भी वह कर्तृत्व है। उस कर्तृत्व में रागादि नहीं आते। और प्रवचनसार में कर्तृनय से जिस कर्तापने का वर्णन किया है, उसमें तो राग के कर्तापने की बात है, वह त्रैकालिक स्वभावरूप धर्म नहीं परंतु एक क्षण-पर्यन्त की पर्याय का धर्म है; वह पर्याय आत्मा की है, इसलिये उसे आत्मा का धर्म कहा जाता है।

प्रश्न—राग करना, वह तो दोष है, तथापि धर्मी अपने को राग का कर्ता क्यों जानता है ?

उत्तर—वह आत्मा का त्रिकाली स्वभावरूप धर्म नहीं है तथा वह मोक्षमार्गरूप धर्म भी नहीं है, परंतु राग आत्मा की पर्याय में होता है, इसलिये राग को जब तक अपनी पर्याय में धारण कर रखता है, तब तक वह आत्मा का अपना धर्म है और उसका कर्ता आत्मा है। अपनी पर्याय में होता है, इसलिये उसे अपना धर्म कहा है, वह त्रैकालिक नहीं, परंतु क्षणिक पर्याय जितना है। कर्तृनय से इस राग के कर्तापने को जाननेवाला जीव उसी समय उसके अकर्तारूप भी परिणमित होता है; क्योंकि राग के कर्तृत्व के समय ही अन्य अनंत धर्मों में जो शुद्ध चैतन्यपरिणमन है, उसमें राग का कर्तृत्व नहीं है।—इसप्रकार (कर्तृत्व तथा अकर्तृत्व) दोनों धर्म साधक को एक साथ वर्तते हैं।

राग के कर्तापने को जाननेवाला ज्ञानी, उस राग में ही न रुककर शुद्ध चैतन्यस्वभाव की ओर उन्मुख हो गया है। प्रमाण के विषयरूप सामान्य-विशेषात्मक द्रव्य (अनंत धर्मवाला) है, उसके सर्व पहलुओं को जानने पर ज्ञान का झुकाव शुद्ध स्वभाव की ओर होता है। इसलिये पर्याय में से राग का कर्तृत्व दूर होता है और शुद्धात्मा का कर्तृत्व प्रगट होता है। राग का कर्ता

वह व्यवहार है और राग का अकर्ता (साक्षी), वह निश्चय है। धर्मी जीव दोनों को यथावत् जानता है।

प्रश्न—रागादि का कर्ता होना आत्मा का धर्म हो तो वे कभी दूर नहीं हो सकते, आत्मा सदा रागादि करता ही रहेगा?

उत्तर—नहीं, ऐसा नहीं है; यह कर्तृधर्म अनादि-अनंत नहीं है परंतु साधकदशा में उस पर्याय जितना ही यह धर्म है। और पर्याय में ऐसा धर्म है, उसे जाने तो राग के कर्तृत्व रहित जो त्रैकालिक आत्मद्रव्य है, उसे भी जाने और रागादि का साक्षी हो जाये। रागादिरूप आत्मा होता है—इसप्रकार आत्मा के धर्म द्वारा जिसने आत्मा को जाना, उसकी दृष्टि मात्र राग के ऊपर न रहकर, अनंत गुण के पिण्ड शुद्ध चैतन्यद्रव्य पर जाती है और वह राग का साक्षी हो जाता है। क्रमशः राग का कर्तृत्व (राग का परिणमन) छूटकर; उसका पूर्ण अकर्ता होकर, वह वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट करता है। यह सम्यक् नयों का फल है। किसी भी सम्यक्नय से आत्मा को जानने पर शुद्ध चैतन्य की प्राप्ति होती ही है।

कर्तृनय से आत्मा विकार का कर्ता है—ऐसा कहा, तथापि मात्र विकार के सन्मुख देखने से इस धर्म का सच्चा ज्ञान नहीं होता, परंतु अनंत धर्मवाले आत्मद्रव्य के स्वीकारपूर्वक ही उसके धर्म जानने में आते हैं। सम्यक् नयों का फल तो मोक्ष कहा है, इसलिये राग के कर्तृत्व को जाननेरूप जो कर्तृनय है, उसका फल भी मोक्ष है, क्योंकि सम्यक्रूप से उस धर्म को जाननेवाला उसी समय अनंत धर्मस्वरूप चैतन्यतत्त्व को भी श्रुतप्रमाण द्वारा जानता है। इसप्रकार शुद्ध स्वभाव को दृष्टि में रखकर पर्याय में राग के कर्तृत्व का ज्ञान करे, उसे ही 'कर्तृनय' होता है, अन्य को कर्तृनय नहीं होता। नय, वह सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्य की किरण है, अज्ञानी को नय नहीं होते। ज्ञानी जीव प्रमाण से देखे या नय से देखे—परंतु अंतर में शुद्ध चैतन्य को ही प्राप्त करता है।

कर्तृनय से आत्मा को देखे, उसे भी ऐसा नहीं होता कि मेरा आत्मा सदा रागादि का कर्ता ही रहेगा! कर्तृनयवाले को भी पर्याय में से प्रतिक्षण राग का कर्तृत्व कम होता जाता है और ज्ञानचेतनारूप साक्षीपना बढ़ता जाता है।—ऐसी साधकदशा है। 'वर्तमान में राग को करता है, ऐसा मेरे आत्मा का एक धर्म है।' इसप्रकार कर्तृनय से देखनेवाला ज्ञानी भी, उस धर्म द्वारा धर्मी

ऐसी शुद्ध चैतन्यवस्तु को अंतर में देखता है, इसलिये कर्तृनय का फल कहीं राग का कर्ता रहना नहीं है, परंतु शुद्ध चैतन्यद्रव्य के अवलंबन द्वारा राग दूर हो जाये, वह कर्तृनय का फल है।

समयसार में बारंबार ऐसा कहा है कि ज्ञायकस्वभाव आत्मा है, वह राग का कर्ता नहीं है; और यहाँ ऐसा कहा है कि आत्मा को राग का कर्तापना है—ऐसा उसका एक धर्म है,—इन दोनों कथनों का संबंध समझना चाहिये। अनुभूति के विषय का शुद्धात्मा बतलाने के लिये उसे राग का सर्वथा अकर्ता ही कहा, और प्रमाण के विषयरूप आत्मा के अनंत धर्म बतलाने के लिये राग का कर्तृत्व भी उसमें कहा;—उनमें कहीं विरोध नहीं है।

कर्तृनय से आत्मा को राग का कर्ता माना, इसलिये अब वह आत्मा अनादि-अनंत राग का कर्ता ही रहेगा—ऐसा नहीं है; क्योंकि इस धर्म को देखनेवाला भी केवल इस धर्म जितना ही संपूर्ण आत्मा नहीं मानता, परंतु उसी समय ज्ञान-आनंद आदि अनंत धर्मवाले शुद्ध आत्मा को वह श्रुतज्ञान में स्वीकार करता है, और शुद्ध आत्मा को देखनेवाला राग में कहीं अटक जाता, अर्थात् 'मैं रागरूप ही रहूँगा' ऐसी प्रतीति वह नहीं करता; उसे तो ऐसी निःशंकता है कि मैं अपने चैतन्यस्वभावरूप परिणमित होकर अल्पकाल में ही इस राग का अभाव कर दूँगा। अभी रागरूप जितना परिणमन है, उतना मेरा धर्म है, उस राग के दुःख का वेदन भी मुझे है; कहीं धर्मी हुआ, इसलिये उसे राग के दुःख का वेदन नहीं होता—ऐसा नहीं है। धर्मी भी अपने में जितना राग है, उतना दुःख समझता है।—परंतु इतना अवश्य है कि उस दुःख के समय भी सम्यक्दर्शनादि से जो अपूर्व आत्मशांति का वेदन प्रगट हुआ है, वह वेदन भी वर्तता है, और उस वेदन में राग का या दुःख का अभाव है। एक ओर अपूर्व शांति और दूसरी ओर राग का दुःख—दोनों भाव धर्मी की पर्याय में वर्तते हैं, और उन दोनों को धर्मी अपने में जानता है।

— 'आत्मा को राग का कर्तृत्व स्वीकार करने से तो वह कर्तापना अनादि-अनंत रह जायेगा!—इसलिये कर्म को ही राग का कर्ता कहो'—ऐसा किसी को लगे तो वह गलत है, कर्तृनय के अभिप्राय को वह समझा ही नहीं है। हे भाई! कर्तृधर्म तो उस क्षणिक पर्याय जितना ही है, त्रिकाल नहीं है; उसी समय त्रिकाली चेतनद्रव्य तो राग के कर्तृत्व रहित ही है। कर्तृधर्म किसका है? आत्मद्रव्य का है; वह आत्मद्रव्य कैसा है? अनंत धर्म के पिण्डरूप शुद्ध चैतन्यमात्र है। ऐसे शुद्ध आत्मा की दृष्टिपूर्वक, कर्तृनय से राग का कर्तापना जिसने जान लिया,

उसे राग बढ़ता नहीं है; क्योंकि उसी समय अकर्तृनय से आत्मा का स्वभाव रागादि का अकर्ता ही है–ऐसा वह जानता है।

— तथा कोई ऐसा कहे कि—'कर्म तो आत्मा को विकार नहीं कराते, परंतु कर्तृनय से आत्मा विकार करता है–ऐसा हमने मान लिया है'! तो उससे पूछते हैं कि हे भाई! तेरी दृष्टि कहाँ है? किसके समक्ष दृष्टि रखकर तू आत्मा के कर्तृधर्म को स्वीकारता है? तेरी दृष्टि विकार पर है या चैतन्यमय आत्मद्रव्य पर? विकार पर दृष्टि रखने से आत्मा के धर्म का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, आत्मद्रव्य पर दृष्टि रखकर ही उसके धर्म का यथार्थ ज्ञान होता है। इसलिये कर्तृनय से राग का कर्तापना जाननेवाली दृष्टि भी शुद्ध आत्मद्रव्य पर ही होती है, और शुद्ध आत्मा पर दृष्टि हो, उसे विकार का कर्तृत्व मिटकर अल्पकाल में वीतरागता हुए बिना नहीं रहती। इसप्रकार अनंत धर्म के आधाररूप शुद्ध आत्मद्रव्य को दृष्टि में रखकर समझे, तभी सर्व कथनों का यथार्थ तात्पर्य समझ में आता है। और ऐसा तात्पर्य समझनेवाले ज्ञानी–साधक की दशा कोई अद्भुत–अपूर्व–अचिंत्य–आनंदरूप होती है।

जैन संस्कृति क्या है?

जिससे आत्मा में वीतरागभाव के उत्तम संस्कार आयें, वही सच्ची जैन संस्कृति है। इसलिये अंतर्मुख होकर आत्मा को साधना ही जैन संस्कृति है, उससे जीव को वीतरागता के संस्कार आते हैं।

तुम कार्यकर्ता हो?

हाँ, धर्मी कहता है कि अपने स्वभाव को साधनेरूप कार्य के हम कर्ता हैं, इसलिये हम कार्यकर्ता हैं। स्वभाव को साधना, वह हमारा कार्य है। अपने ज्ञान–आनंदरूप कार्य के कर्ता हम हैं।

अशरीरी होने का उपाय

आवश्यक

मोक्ष के लिये मुमुक्षु को अवश्य करने योग्य स्वाधीन कार्य

जिनेश्वर भगवंतों ने स्वाधीन आत्मवश सुंदर मोक्षमार्ग बतलाया है। महाभाग्य से ऐसे सुंदर मार्ग को प्राप्त करके हे जीव! तू अपने परम आनंदमय परमात्मतत्त्व को भज। 'वाह रे वाह! आत्मा! तेरा मार्ग तेरे अंतर में ही समाया है। वाणी जहाँ पहुँच नहीं सकती, विकल्प जिसमें प्रविष्ट नहीं हो सकता, ऐसा निरालंबी स्वाश्रित मार्ग है। नमस्कार हो ऐसे स्वाश्रित सुंदर मार्ग को और वह मार्ग प्रकाशित करनेवाले वीतरागी संतों को!

धर्मात्मा जीव परम जिनमार्ग के आचरण में कुशल है। जिनमार्ग कैसा है?—तो कहते हैं कि आत्मवश है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र आत्मवश है—स्ववश है अर्थात् शुद्ध आत्मा में अंतर्मुखता से ही वह प्रगट होता है। उसमें कहीं ग्रंथ की शरण नहीं है, अन्य का आश्रय नहीं है। निज परम शुद्धात्मतत्त्व में अंतर्मुखतारूप स्ववशपना, वह धर्मात्मा का परमावश्यक कार्य है, वही निर्वाण का मार्ग है। अहो, अशरीरी होने का मार्ग वीतरागी संतों ने जगत में प्रकाशित किया है।

सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि हे भव्य जीवो! आत्मा के आधीन ऐसे मोक्षमार्गरूप शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह नियम से करने योग्य सारभूत कर्तव्य है। मोक्ष के हेतु तुम ऐसे शुद्ध रत्नत्रयमार्ग की आराधना करो तथा अन्यवश—पराश्रित भावों को छोड़ो।—यह अशरीरी होने का अचूक उपाय है।

अरे, पूर्ण स्वाधीनतारूप मोक्ष! उसका उपाय पराश्रय कैसे हो सकता है? पर के आश्रय से तो पराधीनता होती है, स्वाधीनता तो स्वद्रव्य के ही आश्रय से होती है। इसलिये हे भाई!

जिनशासन में भगवान के कहे हुए, ऐसे स्वाश्रित मार्ग को तू पहिचान! और उससे विपरीत ऐसे समस्त पराश्रित भावों की श्रद्धा छोड़। राग भले ही शुभ हो, तथापि वह पराश्रितभाव है; आत्मस्वभाव के अवलंबन से कहीं राग की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये कहते हैं कि—अहो! जिननाथ के मार्ग में स्वाधीन-स्ववश ऐसे वीतरागभाव से ही जीव शोभायमान होता है। सम्यग्दर्शनादि वीतरागभावरहित जीव जिनमार्ग में शोभा नहीं देता। पराश्रय से कल्याण माननेवाले जीव को तो परवश हैं, वे परवश जीव तो नौकर जैसे हैं, स्वाधीन जिनमार्ग में वे शोभा नहीं देते।

मोक्ष का मार्ग तो पर की अपेक्षा रहित, अत्यंत निरपेक्ष, सम्पूर्ण अंतर्मुख है, शुद्ध द्रव्य के ही आश्रित आनंदमय मोक्षमार्ग है। हे जीव! ऐसे सच्चे मोक्षमार्ग के स्वरूप का निर्णय करके तू तुरंत ही स्वद्रव्य में अंतर्मुख हो... और स्वद्रव्य की अनुभूति कर। मोक्षमार्ग अर्थात् स्वद्रव्य की अनुभूति; स्वद्रव्य की अनुभूति तो स्वद्रव्य के ही आश्रय से होगी न! कहीं पर के आश्रय से स्वद्रव्य की अनुभूति हो सकती है? स्वाश्रित स्वात्मलब्धिरूप ऐसे मोक्षमार्ग की साधना तीर्थंकरों ने की है और वीतरागी संतों ने परमागम में वह मार्ग प्रकाशित किया है।-आज भी धर्मी के अंतर में वह मार्ग जयवंत वर्तता है और ऐसा जीव धर्मात्मा संतों की मंडली में शोभा देता है।

वाह, मेरा आत्मा ही मेरे अनंत स्वभाव से पूर्ण सामर्थ्यवाला है, उसी के अनुभव से मोक्ष का परम आनंद सधता है।—इसप्रकार स्वद्रव्योन्मुख होकर अपने आत्मा में जिसने पूर्णता देखी, वह अपने सिवा अन्य का आश्रय क्यों लेगा? जो दूसरे के आश्रय से मोक्ष का साधन करना चाहता है, उसने अपने पूर्ण स्वभाव को जाना ही नहीं है; जो अपने पूर्ण स्वभाव को जान ले, वह दूसरे के पास भीख माँगने नहीं जाता, राग में मोक्षमार्ग नहीं मानता। शुद्ध आनंद की उपलब्धिरूप मोक्ष, उसका उपाय शुद्ध आत्मा के ही आश्रित है;—ऐसे स्वाश्रित जिनमार्ग को प्राप्त करके हे जीव! हे भव्य शार्दूल! तू शीघ्र अपनी मति को अपने आत्मा में लगा। धर्मात्माओं की मोक्षमण्डली में तो ऐसे स्ववश धर्मात्मा ही शोभा देते हैं, परवश पराधीन उसमें शोभा नहीं देते। अहा, ऐसा अलौकिक जिनमार्ग! उसकी प्राप्ति से धर्मात्मा सुशोभित हैं।

'अवश' अर्थात् जो दूसरे के वश नहीं, आत्मा के ही वश है, वह जीव मोक्ष के लिये

आवश्यक क्रिया करनेवाला है। चैतन्यतत्त्व में स्वाधीन दृष्टि करते ही अनंत भव का अभाव हो गया और पश्चात् उसमें लीन होने पर तो साक्षात् अशरीरीपना होता है।

शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा स्वयं धर्म हुआ, धर्म होने से आत्मा में सर्वत्र आनंदरस फैल गया। ऐसी अपूर्व स्वाधीन सुखदशा शुद्धोपयोग द्वारा ही होती है, इसके अतिरिक्त किन्हीं रागादि भावों द्वारा ऐसी दशा नहीं होती। ऐसी दशा होते ही देहातीत चैतन्यभाव यहीं अनुभव में आता है और उसके फल में देहातीत-अशरीरी सिद्धपद प्रगट होता है। धर्मात्मा कहते हैं कि कहो! अपने आत्मा के आश्रय से ऐसा परम निर्वाणमार्ग प्रगट करके मैं आत्मा के किसी अद्भुत निर्विकल्प आनंद का अनुभव करता हूँ।

देखो, यह धर्मी के आवश्यक का अलौकिक वर्णन! आत्मा के सिवा अन्य किसी के जो वश नहीं है, वह अवश है; ऐसे जीव का जो स्वाश्रित कार्य है, वह मोक्ष के लिये आवश्यक है। इसी युक्ति और इसी उपाय से अशरीरी हुआ जाता है।

जो कार्य स्वाश्रय से हो, जिसमें पर का आश्रय न हो, वह तो शुद्धभाव ही होता है; स्वाश्रय से कहीं राग की उत्पत्ति नहीं होती। शुभराग भी कहीं आत्मा के आश्रय से नहीं होता, वह भी पर के आश्रय से होता है; इसलिये वह परवश भाव है, वह मोक्ष का उपाय नहीं है। मोक्ष का उपाय तो आत्मा के आश्रय से होनेवाला शुद्धभावरूप कार्य ही है; उसी से जीव अवयव रहित-शरीररहित सिद्धपद प्राप्त करता है।

देखो, यह समयसार तो अशरीरी चैतन्यभाव से भरपूर है। आत्मा के चिदानन्दस्वभाव के आश्रय से जो भी सम्यक्त्वादिभाव प्रगट हुए, वे सब अतीन्द्रिय-अशरीरी हैं।

जो जीव स्वहित में लीन हो, वह अपने शुद्ध जीवास्तिकाय के अतिरिक्त अन्य के वश नहीं होता। अरे, बहिर्मुखवृत्ति में तो पर की वशता है, पराधीनता में तो सुख कहाँ से होगा? स्वाधीन चैतन्यतत्त्व स्वयं अपने में ही पूर्ण है, उसमें अंतर्मुखवृत्ति को जगत में अन्य किसी की अपेक्षा नहीं है, उसी में अतीन्द्रिय स्वाधीन सुख है, और वही शरीर रहित होने की युक्ति है, वही मोक्ष का उपाय है।

अरे, मोक्ष के लिये ऐसा कार्य करने योग्य है—ऐसा एक बार निर्णय तो कर!—ऐसा निर्णय करने पर उपयोग परभावों से छूटकर अंतर के चैतन्यस्वभाव की ओर उन्मुख हो जाता है

और स्वाधीन ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कार्य प्रगट होता है; वही मोक्ष के लिये आवश्यक कार्य है, वही मुमुक्षु को नियम के अवश्य करने योग्य कार्य है।

भाई, मोक्ष के लिये आवश्यक कार्य तेरे चैतन्य के असंख्य प्रदेशों में ही होता है, अन्यत्र कहीं नहीं होता; इसलिये वह तेरा स्ववश कार्य है, वह परवश नहीं है। सम्यग्दर्शन भी तेरे असंख्यप्रदेशी चैतन्य में होता है, उसमें अतीन्द्रिय आनंद फैला हुआ है। कहने में शब्द कम हैं, परंतु अंतर में उसके गुणों की महिमा का पार नहीं है; अनंत गुण के पक्वान्नों का मधुर चैतन्यरस तुझमें भरा है, उसका स्वाद ले। वही अशरीरी होने की रीति है। इस उपाय से अवश्य सिद्ध हुआ जा सकता है।

अशुभराग तो परवश है और शुभराग भी परवश है। जो अशुभ में वर्तता है, उसके तो आवश्यक नहीं है, परंतु शुभराग भी मोक्ष के लिये आवश्यक कार्य नहीं है, वह शुभराग तो मोक्षकार्य से विमुख है; मोक्ष के लिये आवश्यक कार्य तो शुद्धभाव ही है, वही आत्मवश भाव है। अरे, मोक्ष का कार्य कहीं रागवाला होता है? परवश वर्तनेवाला तो नौकर कहलाता है; नौकर कहीं शोभा देता है? जिनमार्ग तो स्वाधीन-स्ववश भाव से ही शोभा देता है, वह परवशता से शोभा नहीं देता। स्ववश योगी ही वीतराग रत्नत्रय द्वारा जिनमार्ग में शोभते हैं। चतुर्थ गुणस्थान में जो सम्यक्त्वादि शुद्धभाव हैं, उतना तो रागरहित स्ववशपना है, वह जिनमार्ग में शोभता है। राग द्वारा जिनमार्ग में शोभित नहीं होता परंतु वीतरागभाव द्वारा ही शोभित होता है; वही जिनमार्ग है, वही मोक्ष का उपाय है और वही धर्मात्मा की आवश्यक क्रिया है।

जिनमार्ग में रत्नत्रयरूप वीतरागकार्य करनेवाले मुनिवर सुकृती कहे जाते हैं; सुकृत अर्थात् उत्तम कृत्य; सम्यग्दर्शनरूपी उत्तम कार्य जिनने किया है, वे धर्मात्मा सुकृती हैं। वर्तमान कलिकाल में भी कोई विरले सुकृती जीव सम्यग्दर्शनादि सहित देखने में आते हैं, और सम्यग्दर्शन, वह सद्धर्म की रक्षा करनेवाला मणि है। जहाँ सम्यग्दर्शन है, वहाँ चाहे जैसी आपत्ति के बीच भी जीव के धर्म की रक्षा होती है। संसार की सर्व आपत्तियों से रक्षा करनेवाला सम्यग्दर्शन रक्षामणि समान है; और ऐसे सम्यग्दर्शन के उपरांत जिसे मुनिदशा हुई, उसकी तो बात ही क्या! ऐसे मुनि भगवंत धर्म के रक्षक हैं, वे राग के रक्षक नहीं हैं परंतु वीतरागभावरूप

सत्धर्म के रक्षक हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के रक्षक हैं। सम्यग्दृष्टि भी सत्धर्म के रक्षक और पोषक हैं, वे राग के रक्षक या पोषक नहीं हैं।

अहो, मुनि की क्या बात! वे तो स्ववश हैं और जिनेश्वर भगवान से किंचित् ही न्यून हैं; वे स्वयं धर्म के रक्षक चैतन्यमणि हैं। जगत में ऐसे मणि होते हैं कि जिसके हाथ में वह मणि हो, उसे सर्पादि का विष नहीं चढ़ता और कोई बाह्य संकट नहीं आता; उसीप्रकार आत्मा में स्ववशपना, वह ऐसा मणि है कि जिसके पास वह चैतन्यमणि हो, उसे मिथ्यात्वादि का विष नहीं चढ़ता, और उसके सम्यग्दर्शनादि की रक्षा होती है, इसलिये संसार की कोई आपत्ति उसे नहीं आती। मुनि स्वयं वीतरागमूर्ति है और वीतरागस्वरूप का ही बारंबार उपदेश देते हैं। मुनि का या सम्यग्दृष्टि का उपदेश राग का पोषक नहीं हो सकता। वीतरागस्वरूप आत्मा बतलाकर उसकी श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रतारूप धर्म की रक्षा करनेवाले धर्मात्मा हैं। ऐसे धर्मात्मा आत्मा के आधीनरूप से सम्यक् क्रिया करनेवाले हैं। वह आवश्यक अशरीरी ऐसी सिद्धदशा का कारण है। अशरीरी होने का ऐसा सुंदर मार्ग वीतरागी संतों ने जिनमार्ग में प्रकाशित किया है।

स्वाधीन चैतन्य में से प्रगट हुआ जो आत्मा का सुख, वह धर्मी जीवों को प्राणों से भी प्रिय है। चैतन्यसुख के निकट जगत में अन्य कुछ उसे प्यारा नहीं है। अहा, चैतन्य के स्वभाव में अंतर्मुख होकर प्रगट हुई सम्यक्त्वादि अपूर्व आनंदमय वीतरागीदशा, वही हमें प्राणप्रिय है, वही हमारी प्यारी से प्यारी वस्तु है। अहा, हमारे ऐसे आनंद के समक्ष लोकप्रशंसा का क्या मूल्य? अरे, सौ इन्द्र और तीन लोक के जीव प्रशंसा करें, तथापि जिस सुख का माप नहीं हो सकता ऐसा वचनातीत अतीन्द्रिय आत्मिक सुख का वेदन हमारे आत्मा में हो रहा है, ऐसे आत्मरस के निकट जगत के सारे रस फीके हैं, उनमें हमें कहीं किंचित् सुख भासित नहीं होता।

देखो तो सही, यह धर्मात्मा की वैराग्यपरिणति! आत्मा में सर्वथा अंतर्मुख ऐसी परिणति ही मोक्षमार्ग है। ऐसे मार्गरूप से परिणमित होकर वीतरागमार्गी संतों ने परमागमों में वह मार्ग प्रकाशित किया है। ऐसे स्वाधीन मार्ग का निर्णय करने से मोक्ष का द्वार खुल जाता है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र यह तीनों कार्य आनंददायक हैं, इनके द्वारा मोक्ष सधता है। अतीन्द्रिय सुख के साधनरूप यह श्रेष्ठ-सुंदर शुद्धरत्नत्रय कार्य ही मोक्षार्थी जीव का मोक्ष के लिये आवश्यक कार्य है; मोक्ष के हेतु वह अवश्य करनेयोग्य कार्य

है; वही मोक्ष प्राप्त करने की युक्ति है और वही जिनेश्वरों का मार्ग है। ऐसे सुंदर मार्ग को संत साधते हैं और जगत को यही मार्ग बतलाते हैं।

हे जीव! ऐसे मार्ग को महाभाग्य से प्राप्त करके तू अंतर्मुखरूप से अपने परम आनंदमय परमात्मतत्त्व को भज! 'वाह रे वाह! आत्मा! तेरा मार्ग तेरे अंतर में समाया है।' वाणी जहाँ पहुँच नहीं सकती, विकल्प जिसमें प्रवेश नहीं कर सकता, ऐसा निरालंबी स्वाश्रित आत्मा है।

नमस्कार हो ऐसे स्वाश्रित सुंदर मार्ग को और वह मार्ग प्रकाशित करनेवाले संतों को।

पुस्तक प्रकाशन संबंधी सूचना

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के प्रकाशन विभाग ने निम्नोक्त पुस्तकें छपाने का निर्णय किया है। जिन जिज्ञासुओं तथा मुमुक्षु मंडलों को इन पुस्तकों की जितनी प्रतियों की आवश्यकता हो, वे शीघ्र ही पत्र द्वारा सूचित करें, ताकि पुस्तकों की संख्या का निर्णय किया जा सके।

1- श्री समयसार शास्त्र (पंचमावृत्ति), श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित।

2- श्री प्रवचनसार शास्त्र (तृतीयावृत्ति), श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित।

3- श्री मोक्षमार्गप्रकाशक (तृतीयावृत्ति), पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी कृत।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्रीगुरु के सान्निध्य का फल—

निर्मल सुखकारी धर्म की प्राप्ति

श्रीगुरु के सान्निध्य में रहनेवाला जीव क्या प्राप्त करता है ? और वास्तव में श्रीगुरु का सान्निध्य किसने किया कहा जाये ? यह बात स्वामीजी इस प्रवचन में अद्भुत रीति से समझाते हैं।

[नियमसार, कलशः 234]

जिन्हें भवछेदक निर्वाणभक्ति प्रगट हुई है, अर्थात् जिनको रत्नत्रय की आराधना वर्तती है, ऐसे धर्मात्मा जानते हैं कि अहो! श्रीगुरु के सान्निध्य में सुखकारी धर्म हमने प्राप्त किया है, और चैतन्य की अगाध महिमा को जाननेवाले ज्ञान द्वारा समस्त मोह की महिमा नष्ट हो गई है। ऐसा मैं राग-द्वेष रहित शुद्ध ध्यान द्वारा शांतचित्त से आनंदमय निजतत्त्व में स्थित होता हूँ, निजपरमात्मतत्त्व में मग्न होता हूँ।

श्रीगुरु के सान्निध्य का फल क्या ?—कि निर्मल सुखकारी धर्म की प्राप्ति हुई, वह श्रीगुरु के सान्निध्य का फल है। श्रीगुरु का उपदेश भी ऐसा ही है कि राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व की अनुभूति कर। जिसने ऐसी अनुभूति की, उसी ने वास्तव में श्रीगुरु को पहिचानकर उनका सान्निध्य किया है। श्रीगुरु के उपदेश के साररूप आनंदमय आत्म-अनुभूति उसने प्राप्त कर ली है।

मात्र शुभराग, वह श्रीगुरु के उपदेश का सार नहीं है। जो राग में स्थित है और राग से पार चैतन्य की समीपता नहीं करता, वह श्रीगुरु के निकट नहीं परंतु दूर है। चैतन्य की समीपता करके जिसने सुखकारी धर्म प्राप्त किया है, उसी ने वास्तव में श्रीगुरु की निकटता की है और मोहबल को ज्ञानबल से नष्ट कर दिया है।

सिर्फ शास्त्रों से नहीं परंतु ज्ञानी गुरु के सान्निध्य से आत्मतत्त्व को जानने पर निर्मल सुखरूप धर्म प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शनादि वीतरागपरिणति, वह सुखरूप धर्म है, उसकी प्राप्ति

चैतन्यस्वभाव में सन्मुखता से होती है। अंतर में अपने परमतत्त्व की समीपता है और निमित्तरूप में गुरु की समीपता है।

गुरु कैसे हैं ?—कि जो चैतन्यतत्त्व की महिमा बतलाकर उसमें दृष्टि करने को कहते हैं। श्रीगुरु की समीपता के द्वारा ऐसे आत्मतत्त्व की दृष्टि करके, ज्ञान की महिमा द्वारा समस्त मोह की महिमा को नष्ट कर दिया है। चैतन्य की महिमा प्रगट हुई, वहाँ मोह की महिमा छूट गई। सम्यग्दर्शन होने के साथ ही समस्त मोह नष्ट नहीं हो जाता, परंतु उस मोह की महिमा तो नष्ट हो गई है, उसकी शक्ति एकदम क्षीण हो गई है।

श्रीगुरु के समीप चैतन्यतत्त्व का श्रवण करके हे जीव! तू अंतरतत्त्व के निकट जा... वहाँ चैतन्य की परम महिमा ज्ञान में आते ही परभाव की महिमा छूट जायेगी। ऐसे तत्त्व को अंतर में अनुभवना, वह श्रीगुरु के सान्निय में करना है, वही श्रीगुरु की आज्ञा है। वर्तमान में राग-द्वेष होने पर भी धर्मी को सम्यग्दर्शन में चैतन्यपरमेश्वर की प्राप्ति होने पर उसकी महिमा में ज्ञान मग्न हुआ, वह ज्ञानधारा समस्त रागादि परभावों से भिन्न हो गई, उसमें आनंदकंद आत्मा की ही महिमा रही।—इसका नाम निर्वाण-भक्ति है।

अहा, श्रीगुरु ने मुझसे ऐसा कहा है कि तेरे आनंदमय परमात्मतत्त्व के समीप जा। इसप्रकार श्रीगुरु के उपदेश से परमात्मतत्त्व के समीप जाते ही (अंतर्मुख परिणति करने पर) आनंदकारी धर्मदशा मुझे प्रगट हुई है, उसमें अब रागादि की महिमा नहीं रह सकती। जिसे पर की या शुभराग की भी महिमा होती है, उसे अपने वीतरागी आनंदमय तत्त्व की महिमा नहीं आती और सुखकारी धर्म उसे प्रगट नहीं होता, वह तो राग के दुःख का ही अनुभव करता है। श्रीगुरु ने तो ऐसा कहा है कि ज्ञान में चैतन्यभाव की महिमा लाकर स्वसन्मुख हो जा। गुरु ने ऐसा नहीं कहा है कि तू अपनी वाणी का लक्ष करके ही रुक जाना, या मेरे ऊपर शुभराग करके रुक जाना। परंतु श्रीगुरु ने तो ऐसा कहा है कि तेरा परमात्मा तेरे अंतर में तेरे समीप ही विराजमान है, उसे अनुभव में ले। वाणी और राग का लक्ष छोड़कर, पर की महिमा छोड़कर आत्मा के परमस्वभाव की महिमा ले—यही बारह अंग का सार है। ज्ञान-आनंदमय आत्मा की अनुभूति ही सर्व सिद्धांतों का सार है, वही गुरु का परमार्थ सान्निध्य है, वही सिद्धों की निश्चयभक्ति है, और वही निर्वाण का आनंदमय मार्ग है।

शुद्धात्मा की अनुभूति ही द्वादशांग का सार है; वही समस्त गुरुओं के उपदेश का सार है। जिसने स्वानुभूति की, उसने सर्व सिद्धांतों का सार जान लिया है, फिर वहाँ ऐसी कोई

रुकावट नहीं कि बारह अंग पढ़े, तभी आत्मा की अनुभूति हो। उसे शास्त्राभ्यास का बंधन नहीं कि इतने शास्त्र पढ़ना ही होंगे। जिसने सर्व शास्त्रों के रहस्यभूत आत्मविद्या पढ़ ली है—उसकी अनुभूति कर ली है, उसने समस्त सर्वज्ञ परमात्मा को अपने में प्राप्त कर लिया है।– वह भक्त है, वह आराधक है, वह मोक्ष का पथिक है। अरे, आत्म-अनुभूति की महिमा लोगों को ज्ञात नहीं है, और बाह्य शास्त्र-अभ्यास आदि परलक्षी ज्ञान में वे अटक जाते हैं। परंतु शास्त्रों में बतलाया हुआ चैतन्यतत्त्व अंतर में विराजमान है—उसकी सन्मुखता किये बिना शास्त्रों का रहस्य समझ में नहीं आ सकता।

श्रीगुरु के सान्निध्य से जो आनंदमय स्वानुभूति प्रगट हुई, वह अद्भुत है। अहा, अंतर में शांतरस की धारा बह रही है। ऐसी अनुभूति, वह निर्मल सुखकारी धर्म है। ऐसा धर्म मैंने प्राप्त किया है और ऐसे आनंदमय आत्मतत्त्व के ज्ञान द्वारा समस्त मोह की महिमा मैंने नष्ट कर दी है; ज्ञानतत्त्व की अगाध महिमा प्रगट हुई, वहाँ मोह की महिमा छूट जाती है।—इसप्रकार श्रीगुरु के निकट अपने परमतत्त्व को प्राप्त करके, अब मैं उसमें मग्न होता हूँ। समस्त तीर्थंकरों ने ऐसा किया है और मैं भी उन तीर्थंकरों के मार्ग में चलता हूँ।—ऐसी दशा का नाम परमभक्ति है। यह भक्ति भव को छेदनेवाली है और इस भक्ति में चैतन्य के आनंदरस की धारा बहती है।

यह शरीर तो मल-मूत्र का पिण्ड है और चैतन्यप्रभु आत्मा सुंदर आनंदरसमय अनंत गुणों का पिण्ड है।—ऐसे सुंदर आनंदतत्त्व में जिसका चित्त ललचाया है—उसमें उत्सुक होकर मग्न हुआ है, उसका चित्त इन्द्रिय-विषयों में लोलुप नहीं रहता। अहा, चैतन्य के असंख्य प्रदेशों से तो आनंदरस झरता है! और शरीर के अंगों से तो मल-मूत्रादि दुर्गंध बहती है। देखो, चैतन्यतत्त्व की सुंदरता! आनंदरसमय यह उत्तम तत्त्व जगत में सर्वश्रेष्ठ है; उसके सन्मुख होने पर पर्याय में से आनंद झरता है। अरे जीव! एकबार बाह्य विषयों की लोलुपता छोड़कर अंतर में ऐसे सुंदर आनंदमय महान तत्त्व का लोलुपी हो... उसे जानने की अभिलाषा कर। ऐसे तत्त्व को जानकर उसकी अपूर्व भावना से तुझे मोक्षसुख का स्वाद यहीं अनुभव में आयेगा।

अहा, देखो यह पंचमकाल के संत की वाणी! वे तो लाये हैं विदेह की वाणी! उसके भावों को अंतर में उतारे तो आत्मा को ऊपर उठा दे और राग के विकल्पों से पृथक् होकर चैतन्य की वीतरागी शांति का वेदन हो जाये।—ऐसी अपूर्व यह वीतरागी संतों की वाणी है। जिसे सुनकर मुमुक्षु का रोम-रोम हर्ष से उल्लसित हो जाता है, उसके अतीन्द्रिय अनुभव के आनंद की तो क्या बात!

स्वभावाश्रित ज्ञान की अगाध शक्ति

निजस्वभाव का आश्रय लेनेवाले ज्ञान में परज्ञेय को जानने की आकुलता नहीं रहती।

[श्रावण मास के विशेष प्रवचनों से संकलित]

मेरा आत्मा सर्वज्ञस्वभावी वस्तु है—ऐसा निर्णय करके जिसने अंतर्मुख ज्ञान में अपने आत्मा को स्वज्ञेय बनाया, उस साधक जीव की राग से भिन्न हुई ज्ञानपर्याय में कितना अगाध सामर्थ्य है! कितनी अपार शांति है! उसे जानने पर भी आत्मा में साधकभाव की धारा उल्लसित हो जाये!—ऐसा सुंदर वर्णन आप इस प्रवचन में पढ़ेंगे।

साधक की वर्तमान पर्याय में तीनों काल के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने की शक्ति है। धर्मी को जिसप्रकार अपनी वर्तमान-पर्याय की शक्ति का विश्वास है, उसीप्रकार भविष्य की पर्याय के सामर्थ्य का भी विश्वास है... इसलिये भविष्य के लिये मैं अभी से धारणा कर लूँ, इसप्रकार धारणा पर उसका भार नहीं रहता। भविष्य में मेरी जो पर्याय होगी, वह पर्याय उस समय के विकास के बल से भूत-भविष्य को जान ही लेगी। इसलिये भविष्य की पर्याय के लिये अभी धारणा कर लूँ या बाह्य का क्षयोपशम बढ़ा लूँ—ऐसा धर्मी का लक्ष नहीं है, उस-उस समय की भविष्य की पर्याय अतीन्द्रियस्वभाव के अवलंबन के द्वारा जानने का कार्य करेगी। अहा, आत्मा की अनुभूति में ज्ञान एकाग्र हुआ, वहाँ धर्मी को अन्य जानने की आकुलता नहीं होती। जहाँ संपूर्ण ज्ञायकस्वभाव अनुभूति में साक्षात् वर्तता है, वहाँ थोड़े-थोड़े परज्ञेयों को जानने की आकुलता कौन करे? यह बात प्रवचनसार की 33वीं गाथा में कही है—''विशेष आकांक्षा के क्षोभ से बस होओ! स्वरूप-निश्चल ही रहते हैं।''

जो ज्ञान, स्वभाव का आश्रय लेकर कार्य करता है, उसकी महानता के समक्ष शास्त्र के अवलंबनरूप धारणा की महत्ता नहीं रहती। जिसे अन्य ज्ञातृत्व की महत्ता भासित होती है, वह जीव निजस्वभाव को जानने की ओर का बल कहाँ से लायेगा? उसके तो बाह्य ज्ञातृत्व की महत्ता वर्तती है। वर्तमान ज्ञान अंतरंग ज्ञानस्वभाव में उतर जाये—उसका सच्चा मूल्य है। उस पर्याय में अनंत चमत्कारिक शक्ति है... वह राग से सर्वथा भिन्न होकर चैतन्य के अनंतगुणों की गुफा में प्रविष्ट हो गई है। वह पर्याय अपनी वर्तमान अगाध शक्ति को जानती है, तथा भविष्य की उस-उस पर्याय में स्वभाव के अवलंबन से जो अगाध शक्ति है, उसका भी विश्वास उसे वर्तमान में आ गया है। भले ही अमुक क्षेत्र में या अमुक समय में केवलज्ञानादि होंगे-ऐसा भिन्न करके वह न जाने परंतु स्वभाव के अवलंबन से उसे प्रतीति हो गई है कि जैसे वर्तमान में मेरी स्वसन्मुख पर्याय राग से भिन्न रहकर अतीन्द्रियस्वभाव के आश्रय से महान आनंदमय कार्य कर रही है, उसीप्रकार भविष्य में भी वह पर्याय अपने अतीन्द्रिय स्वभाव का अवलंबन लेकर अचिंत्य-चमत्कारिक शक्ति से केवलज्ञानादि कार्य करेगी। ऐसे स्वभाव का अवलंबन मुझे वर्त ही रहा है, तो फिर 'अधिक जानूँ' ऐसी आकुलता का क्या काम है? सर्व को जानने के सामर्थ्यवाला जो सर्वज्ञस्वभाव, उसी का अवलंबन लेकर पर्याय ज्ञानरूप परिणमित हो रही है, वहाँ लोकालोक को जानने की आकुलता नहीं रहती; स्वसन्मुखी ज्ञान में परम धैर्य है, आनंद की लहर है।

अनेक अंग-पूर्व जान लूँ तो मुझे अधिक आनंद हो—ऐसा विशेष जानने पर ज्ञानी का भार नहीं है, परंतु मेरा जो ज्ञानस्वभाव है, उसमें स्थिर होऊँ, उतनी मुझे शांति है। अरे, ज्ञान कहीं आकुलता करेगा?—नहीं; ज्ञान तो निर्विकल्प होकर अंतर में स्थिर होता है।

अंतर में स्वसंवेदन ज्ञान विकसित हुआ, वहाँ स्वयं को उसका वेदन हुआ। दूसरे उसे जानें या न जानें—उसकी कहीं ज्ञानी को अपेक्षा नहीं है। जिसप्रकार सुगंधमय फूल खिलता है, उसकी सुगंध दूसरे लें या न लें, उसकी अपेक्षा फूल को नहीं होती, वह तो अपने में ही सुगंध से भरा है। उसीप्रकार धर्मात्मा को अपने में आनंदमय स्वसंवेदन हुआ है, वही कहीं दूसरों को दिखाने के लिये नहीं है; दूसरे जानें तो मुझे शांति हो—ऐसा धर्मी को नहीं है, वह तो अंतर में अकेले-अकेले अपने एकत्व में आनंदरूप परिणमित हो रहा है।

बौद्ध आत्मा को सर्वथा क्षणिक (वर्तमान पर्याय जितना ही) माननेवाले क्षणिकवादी

कहे जाते हैं। परंतु वास्तव में तो द्रव्यस्वभाव की शक्ति को जाने बिना उसकी एक पर्याय का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता; क्योंकि एक शुद्ध पर्याय में भी इतनी शक्ति है कि वह अनादि-अनंत द्रव्य की, उसके अनंतगुणों की तथा तीनों काल की पर्याय को जान लेती है। अब एक पर्याय की इतनी शक्ति का स्वीकार करने जाये तो उसमें त्रिकाली द्रव्य-गुण-पर्याय का भी स्वीकार हो जाता है। इसके बिना शुद्धपर्याय की शक्ति का भी स्वीकार नहीं होता।

अरे, ज्ञानी की ज्ञानपर्याय में कितना सामर्थ्य है, उसकी जगत को खबर नहीं है। पर्याय की अगाध शक्ति का निर्णय करने जाये, वहाँ भी ज्ञान, राग से पृथक् होकर अंतरस्वभाव में प्रवेश कर जाता है। पर्याय-पर्याय में ज्ञानी का ज्ञान, राग से भिन्न ही कार्य करता है।

अहा, तीनोंकाल को वर्तमान में जान ले—ऐसी ज्ञानपर्याय की शक्ति का जिसे विश्वास हो गया है, उसे बाह्य का क्षयोपशम बढ़ाने की आकुलता नहीं रहती; उसकी ज्ञानपर्याय राग से पृथक् होकर अखंड ज्ञानस्वभाव के आश्रय से कार्य करती है, और इसीप्रकार भविष्य में भी उस-उस समय की पर्याय में स्वभाव के आश्रय से तीनों काल को जानने की शक्ति प्रगट हो जाती है, उसका विश्वास स्वसन्मुख हुई वर्तमान पर्याय में आ जाता है।

त्रिकाली द्रव्य-गुण तथा तीनों काल की पर्यायें—उन सब ज्ञेयों को स्वीकार किये बिना, उन ज्ञेयों को जानने के सामर्थ्यवाली ज्ञानपर्याय का भी स्वीकार नहीं हो सकता। इसलिये ज्ञान को एक शुद्ध पर्याय का भी यदि वास्तव में स्वीकार करने जाये तो उस पर्याय के ज्ञेयरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों का भी स्वीकार हो जाता है। द्रव्य के अस्वीकारपूर्वक अनित्य पर्याय का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।

अरे भाई, अपनी एक पर्याय की पूर्ण शक्ति का स्वीकार कर तो उसके अपार सामर्थ्य में तीनकाल की समस्त पर्यायें और द्रव्य-गुण ज्ञेयरूप से समाये हुए हैं—उन्हें स्वीकार करनेवाला ज्ञान, राग से भिन्न होकर कार्य करता है, फिर परसन्मुखी ज्ञान के ज्ञातृत्व को बढ़ाने की महिमा उसे नहीं रहती। उसका ज्ञान तो स्वसन्मुख एकाग्र होकर अपना कार्य करता है, और आनंद का वेदन करते-करते मोक्ष को साधता है।

एक वर्तमान पर्याय तीनों काल को जाने, उससे कहीं उसे अड़चन नहीं होती, या उसमें अशुद्धता नहीं हो जाती। उसीप्रकार आत्मा त्रिकाल स्थिर रहे, उससे कहीं उसे काल की

अड़चन या अशुद्धता नहीं हो जाती, नित्यपना तो सहज स्वभाव है। जिसप्रकार अनित्यपना है, उसीप्रकार नित्यपना भी है—दोनों स्वभाववाला आत्मा है।

वर्तमान में जो आत्मा है, वही भूतकाल में था और भविष्य में रहेगा—ऐसा वस्तुस्वरूप है, तीनों काल का स्पर्श करनेवाली वस्तु है; उसे त्रिकाल स्थित रहने में बोझ या अशुद्धता नहीं है। ऐसे द्रव्यस्वभाव के स्वीकारपूर्वक उसमें एकाग्र होकर अतीन्द्रियभावरूप परिणमित हुई पर्याय, राग से भिन्न कार्य करती है; और उसी स्वभाव के आश्रय से केवलज्ञान हो, तब वह पर्याय एक-एक समय को भिन्न करके जान सकती है। एक समय को जान सकने का कार्य छद्मस्थ का स्थूल उपयोग नहीं कर सकता, उसका उपयोग असंख्य समय में कार्य करे, ऐसा स्थूल है। बौद्ध जैसे भले ही आत्मा को सर्वथा क्षणिक—एक समय का मानें, परंतु उसका ज्ञान कहीं एक-एक समय की पर्याय को नहीं पकड़ सकता, वह भी असंख्य समय की स्थूल पर्याय को ही जान सकता है।

द्रव्य क्या, पर्याय क्या, पर्याय की शक्ति कितनी ?—इन बातों का अज्ञानी को निर्णय नहीं होता। वह चाहे जिस वस्तु को चाहे जिसप्रकार से अंधाधुंध-अंधे के समान मान लेता है। अरे, द्रव्य-गुण-पर्याय में से एक भी वस्तु का सच्चा निर्णय करे-तो उस ज्ञान में समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों का, तीनलोक-तीनकाल का निर्णय आ जाता है और वह ज्ञान, राग से भिन्न होकर अंतरस्वभाव की ओर उन्मुख हो जाता है; उसमें अनन्त गुणों के सुख का रस भरा हुआ है। अहा, धर्मी की एक ज्ञानपर्याय में कैसी अचिंत्य शक्ति भरी हुई है और उसमें कैसा अद्‌भुत आत्मवैभव प्रगट हुआ है, उसकी जगत को खबर नहीं है। जगत को ज्ञात हो या न हो, परंतु वे ज्ञानी स्वयं अपने में तो अपने वैभव का अनुभव कर ही रहे हैं।

हे भाई! तेरी वर्तमान पर्याय में आनंद तो है नहीं, और यदि तू इस पर्याय जितना ही क्षणिक आत्मा मानेगा तो आनंद कहाँ से प्राप्त करेगा ? आत्मा को सर्वथा क्षणिक मानने पर तुझे कभी आनंद की प्राप्ति नहीं होगी। नित्यस्वभाव जो आनंद से सदा परिपूर्ण है, उसके सन्मुख होकर परिणमित होने पर अनित्य ऐसी पर्याय में भी तुझे आनंदरूपी अमृत की सरिता प्रवाहित होगी। नित्य-अनित्यरूप सम्पूर्ण वस्तु के स्वीकार बिना आनंद का अनुभव नहीं हो सकता। नित्य अंश और अनित्य अंश—दोनोंरूप अखण्ड वस्तुस्वभाव है, उस अनेकांतमय वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करनेवाला जैनशासन जयवंत है। ●●

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रतिदिन सवेरे श्री अष्टपाहुडजी पर तथा दोपहर में श्री समयसारजी पर पूज्य स्वामीजी के भावपूर्ण आध्यात्मिक प्रवचन चल रहे हैं। पिछले दिनों सोनगढ़ में पर्यूषण पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया गया। बाहर से अनेक जिज्ञासुजन सोनगढ़ में पर्यूषण पर्व हेतु आये थे। दिल्ली मुमुक्षु मंडल के करीब 20-25 मुमुक्षुजन पूज्य स्वामीजी को दिल्ली पधारने का आमंत्रण देने आये थे। श्री परमागम-मंदिर का निर्माणकार्य तेजी से चल रहा है। जो देश में अपने ढंग की अद्‌भुत वस्तु होगी। कुछ ही महीनों में निर्माणकार्य पूर्ण हो जाने की आशा है।

पर्यूषण पर्व समाचार

ग्वालियर नगर में दशलक्षण पर्व दिनांक 1-9-73 से 11-9-73 तक सानंद उत्साह के साथ संपन्न हुए। गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी सोनगढ़ से भेजे हुए श्रीमान् पंडित मोतीलालजी जैन कौशल्य आरोनवाले यहाँ पधारे, जिनके प्रवचन बड़ा मंदिर सराफा, माधोगंज मंदिर, नया मंदिर, दाना ओली, मामा का बाजार मंदिर एवं ग्वालियर के मंदिरों में हुये। आपके प्रवचनों से यहाँ के जैन समाज ने अपूर्व धर्मलाभ लिया। इन्हीं के सान्निध्य में क्षमावाणी पर्व सानंद सामूहिकरूप से मनाया गया; आपके पधारने से धर्म की प्रभावना काफी विकसित हुई और आपके प्रवचनों से हजारों की संख्या में जैन बंधुओं ने धर्मलाभ लिया। —चंपालाल जैन

जयपुर (राज.)—विदिशा निवासी श्री पंडित ज्ञानचंदजी वाणीभूषण हमारे विशेष आमंत्रण से पधारे। बारह दिन तक मार्मिक प्रवचनों का कार्यक्रम हुआ। जयपुर की जैन-जैनेतर समाज ने आपके अलग-अलग स्थानों पर दिये गये आध्यात्मिक प्रवचनों की बहुत प्रशंसा की। हजारों की संख्या में उपस्थित रहकर आपकी वाणी का लाभ लिया। पश्चात् पंडितजी का कार्यक्रम दो दिन लाडनू, एक दिन आगरा, एक दिन ग्वालियर में था। पंडितजी के द्वारा अच्छी प्रभावना हुई। सोनगढ़ के संत श्री कानजीस्वामी का उपकार मानते हुए पंडितजी ने समाचार दिया है।

कोटा (राज.)—श्री वीरसंघ के तत्त्वावधान में 11 दिन तक पर्यूषण पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर मंदसौर निवासी पंडित प्रहलादजी विशेष आमंत्रण से पधारे थे। हमेशा जैनतत्त्वज्ञान के प्ररूपण द्वारा मूल विषय को सुंदर ढंग से समझाया है। प्रतिदिन 5.00 घंटे तक जिज्ञासु समाज ने लाभ लिया। सभी कार्यक्रम रामपुरा जैन चैत्यालय में होते थे। तारीख 11-9-73 को एक विशाल जुलूस मुख्य बाजारों से होता हुआ निकाला गया और नदी से कलश भरकर अलग-अलग मंदिरों में कलशाभिषेक हुआ। तारीख 14 को महिलाओं की सभा थी। तारीख 16 को शहर से चार मील दूर फैक्टरी एरिया में वन्सुआ के जिनमंदिर में शहर की सब जैन महिलायें एकत्रित हुईं, वहाँ भी श्रीजी का कलशाभिषेक बड़े उल्लासपूर्वक हुआ। —लालचन्द जैन मंत्री

करहल (उ.प्र.)—हमारी प्रार्थना पर सोनगढ़ की संस्था ने ब्रह्मचारी श्री पंडित रमेशचंद्रजी को पर्यूषण पर्व प्रवचनादि कार्यक्रमों के लिये भेजा। उनके आने से अच्छी धर्मप्रभावना हुई। यहाँ जैन समाज के करीब 250 घर हैं। प्रतिदिन तत्त्वार्थसूत्र, जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, शंका-समाधान तथा पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के टेप-रिकार्डों द्वारा तीन-चार बार आध्यात्मिक कार्यक्रम होते थे। प्रत्येक कार्यक्रम में पाँच सौ-छह सौ के करीब उपस्थिति रहती थी। हम सोनगढ़ की संस्था का, परम पूज्य स्वामीजी का श्री नवनीतभाई जवेरी का तथा ब्रह्मचारी रमेशचन्द्रजी का हृदय से आभार मानते हैं कि जिनके द्वारा यह धर्मप्रचार हो रहा है। — दिगंबर जैन समाज, करहल

आरौन (म.प्र.)—अशोकनगर निवासी श्री पंडित धर्मचंद्रजी हमारे आमंत्रण पर पधारे। प्रतिदिन छह घंटे का धार्मिक कार्यक्रम दिया। प्रवचन, शंका-समाधान आदि के द्वारा सरल ढंग से धर्म का स्वरूप समझाया। समाज ने पूज्य स्वामीजी का उपकार मानते हुए पंडितजी के प्रति आभार प्रदर्शित किया। —राजमल जैन

राघोगढ़ (म.प्र.)—श्री पंडित मिश्रीलालजी चौधरी हमारे आमंत्रण पर पधारे। प्रतिदिन तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, दस लक्षणधर्म आदि पर अच्छे प्रवचन होते थे। समाज ने भलीभाँति लाभ लिया। अंतिम दिन श्री पंडितजी एवं सोनगढ़ की संस्था के प्रति आभार व्यक्त किया।

बरायठा (म.प्र.)—पर्यूषण पर्व में हमने श्री ब्रह्मचारी बाबूलालजी को सोनगढ़ संस्था के आदेशानुसार आग्रहपूर्वक रोक लिया था। ब्रह्मचारीजी ने पूज्य स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित जैनधर्म का सच्चा स्वरूप हमें समझाया और शिक्षण कक्षा द्वारा भी समाज को अच्छा लाभ हुआ।

सनावद (म.प्र.)—इस वर्ष श्री ब्रह्मचारी जतीशचन्द्रजी के (जो प्रायः सोनगढ़ ही रहते हैं) रहने से अच्छी धर्मप्रभावना हुई है।

लोहारदा (म.प्र.)—श्री सुजानमलजी मोदी के पधारने से प्रतिदिन तीन बार आध्यात्मिक प्रवचन तथा एकबार शंका-समाधान का कार्यक्रम रहता था। समाज ने अच्छी तरह धर्मलाभ लिया। —मानिकचंद पाटौदी

रतलाम (म.प्र.)—हमारे आमंत्रण पर तथा सोनगढ़ संस्था के आदेशानुसार बड़ौत निवासी श्री पंडित राजकिशोरजी जैन पर्यूषण पर्व में प्रवचनादि हेतु पधारे थे। प्रतिदिन श्री समयसारजी, श्री मोक्षशास्त्र तथा दसलक्षण धर्म पर आपके प्रवचन होते थे। हम सोनगढ़ की संस्था के तथा पंडितजी के बड़े आभारी हैं, जिनके कारण हमें धर्म का स्वरूप समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। — मोहनलाल छाबड़ा

मंत्री—जैनसमाज

देषालपुर (म.प्र.)—पर्यूषण पर्व के अवसर पर श्री अजमेरा साहब पधारे थे। पर्व बड़े ही उत्साहपूर्वक आध्यात्मिक वातावरण में मनाया गया। यहाँ वीतराग विज्ञान पाठशाला सुचारुरूप से चल रही है।

दमोह (म.प्र.)—यहाँ पर्यूषण पर्व के अवसर पर विदिशा निवासी श्री पंडित जवाहरलालजी पधारे थे। प्रतिदिन चार घंटे तक आपके प्रवचनादि के कार्यक्रम होते थे। जिनमें अच्छी उपस्थिति रहती थी। अनेक मुमुक्षु बाहर से भी आये थे। दो दिन श्री तारणतरण चैत्यालय में भी आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए थे। आपके आग्रह से वीतरागविज्ञान पाठशाला की स्थापना हो चुकी है। हम सब पंडितजी के एवं सोनगढ़ प्रचार विभाग के आभारी है। —भगवानदास जैन

आगरा (उ.प्र.)—हमारे विशेष आमंत्रण पर बम्बई निवासी श्री पंडित हिमतभाई पर्यूषण पर्व में प्रवचन हेतु पधारे। आपके साथ श्री ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी गोरे भी आगरा पधारे थे। दोनों विद्वानों के प्रवचन छह स्थानों पर होते थे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों को लोगों ने बड़ी रुचि से सुना और हर्ष व्यक्त किया। परम सौभाग्य की बात है कि हमें पंडित हिम्मतभाई जैसे विद्वान को सुनने का सुयोग प्राप्त हुआ। हम सब पूज्य स्वामीजी के तथा सोनगढ़ संस्था के अत्यंत आभारी हैं। आगरा में 11 दिन का कार्यक्रम पूर्ण करके पंडितजी 10 दिन के लिये बाह, एत्मादपुर, टूण्डला, शिकोहाबाद, जसवंतनगर, सिरसागंज, करहल, कुरावली, इटावा आदि नगरों को अपने प्रवचनों का रसास्वादन कराते हुए बम्बई पहुँच गये हैं।

—पद्मचंद्र जैन सर्राफ

बड़ौत (उ.प्र.)—हमारे आमंत्रण पर दाहोद निवासी श्री पंडित कनुभाई पर्यूषण के अवसर पर पधारे। आपके प्रवचन बड़े ही रोचक ढंग के दिन में तीन बार होते थे। श्रोताओं की संख्या अधिक होने का कारण प्रवचन-हेतु एक बड़ा पंडाल बनाया गया था। यहाँ जैनों की संख्या करीब बीस हजार है। बड़ौत जैनसमाज की ओर से हम पंडित कनुभाई का तथा सोनगढ़ की संस्था का आभार मानते हैं। —आनंदकुमार जैन

गौहाटी (आसाम)—हमारे विशेष आमंत्रण पर आगरा निवासी श्री नेमीचंदजी पाटनी पर्यूषण पर्व में व्याख्यान हेतु पधारे। प्रतिदिन दो बार मोक्षमार्गप्रकाशक पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन होते थे तथा शंका-समाधान करते थे। आपके प्रवचनों से समाज अत्यंत प्रभावित हुआ। सभा में उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की भी अच्छी उपस्थिति रहती थी। करीब ढाई सौ से तीन सौ व्यक्ति आते थे। इम्फाल की जैनसमाज ने आपको बुलाने का प्रयत्न किया, एक विशेष व्यक्ति को भी लेने भेजा, किंतु समयाभाववश आप यहाँ न आ सके। गौहाटी से कलकत्ता और बम्बई होते हुए आप सोनगढ़ आये हुए हैं। गौहाटी जैनसमाज ने पूज्य स्वामीजी का आपका तथा सोनगढ़ की संस्था का अत्यंत आभार माना है। —नेमीचंद पांड्या

अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले
आध्यात्मिक प्रकाशन

1	समयसारजी (पद्यानुवाद)	0.50
2	समयसारजी (कलश-टीका) (राजमलजी कृत)	2.75
3	समयसारजी प्रवचन (भाग-1)	4.50
4	समयसारजी प्रवचन (भाग-2)	4.50
5	नियमसार पद्यानुवाद	0.30
6	पंचास्तिकाय	3.50
7	द्रव्यसंग्रह	1.20
8	मोक्षशास्त्र-तत्त्वार्थसूत्र (बड़ी टीका) चतुर्थावृत्ति	6.00
9	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (जिनागम रहस्यकोश)	3-50
10	धर्म की क्रिया	1.60
11	सम्यग्दर्शन भाग-1	2.50
12	ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव	3.00
13	अनुभवप्रकाश	0.65
14	अपूर्व अवसर प्रवचन	1.65
15	अष्ट-प्रवचन (भाग-1)	1.50
16	अष्ट-प्रवचन (भाग-2)	1.50
17	चिद्विलास	1.50
18	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1	1.00
19	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-2	1.10
20	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-3	0.75
21	मूल में भूल	1.00
22	भेदविज्ञानसार (समयसार सर्व-विशुद्धि अधिकार पर प्रवचन)	2.00
23	लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	0.25
24	सैद्धांतिक चर्चा (लेख नं.7 से 14)	1.75
25	सन्मति संदेश (महत्त्वपूर्ण विशेषांक)	0.50
26	तत्त्वनिर्णय	0.20
27	शास्त्र समझने की पद्धति	0.12
28	निमित्त-नैमित्तिक संबंध क्या है ?	0.15
29	भगवान महावीर	0.20
30	अध्यात्मवाणी, भाग-2	0.85
	अमृतवाणी, भाग-3	1.10
31	जैन बालपोथी (भाग-1)	0.25
32	जैन बालपोथी (भाग-2)	0.40
33	बालबोध पाठमाला, भाग-1	0.45
34	बालबोध पाठमाला, भाग-2	0.55
35	बालबोध पाठमाला, भाग-3	0.55
36	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
37	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.75
38	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.75
39	तत्त्वज्ञान पाठमाला, भाग-1	1.00
40	अर्चना (पूजा संग्रह)	0.20
41	पंचम गुणस्थान की 11 प्रतिमाएँ	0.25
42	मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय-9	0.75
43	सुंदर लेख कोपी	0.25
44	आत्मधर्म वार्षिक चंदा (वैशाख से चैत्र तक)	4.00
	आत्मधर्म आजीवन सदस्य	101.00
45	मंगल तीर्थयात्रा (बड़ा सचित्र अंक) जो 30) रुपये का (गुजराती भाषा में) ग्रंथ मात्र	6.00
46	द्रव्यदृष्टि प्रकाश	1.00
47	महावीर तीर्थंकर भगवान	0.28

प्राप्तिस्थान

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-5, बापूनगर, जयपुर-4 (राजस्थान)

दस प्रश्न ❁ दस उत्तर

★ जैन मुनियों का चारित्र कैसा होता है ?
जिससे भव का अंत हो-ऐसा जैन मुनियों का वीतरागी चारित्र है।

★ वीतराग की वाणी किसका निमित्त है ?
वह आत्मा के परम आनंद का और वीतरागता का ही निमित्त है।

★ सम्यग्दर्शन के पश्चात् मुक्ति कब होगी ?
सम्यग्दृष्टि को जितनी शुद्धि है, उतनी तो मुक्ति वर्त ही रही है।

★ अभी केवली भगवान हैं ?
हाँ, विदेह में विराजमान हैं, और यहाँ बैठे-बैठे भी उनके श्रद्धा-ज्ञान हो सकते हैं।

★ केवली की प्रतीति किसप्रकार होती है ?
अपने ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होने पर केवली की भी प्रतीति होती है।

★ अभी मोक्ष है ?
हाँ, प्रत्येक छह महीने-आठ समय में 608जीव मोक्ष को प्राप्त होते हैं। इसप्रकार मोक्ष का मार्ग सदैव खुला ही है, कभी बन्द नहीं है।

★ धर्मात्मा का क्या कर्तव्य है ?
स्वात्मचिंतन करना।

★ उसके पहले क्या करना ?
ज्ञान में आत्मवस्तु का निर्णय करना।

★ आत्मा का शुभविकल्प करते-करते अनुभव होगा ?
नहीं, विकल्पों से भिन्न होने पर आत्मा का अनुभव होगा।

★ सच्ची विद्या कौनसी है ?
सत् ऐसा आत्मा जिस ज्ञान द्वारा ज्ञात हो, वही सच्ची विद्या है।

[प्रवचन से सुंदर संकलन]

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)